गल्प-गुच्छ

द्वितीय भाग

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की बँगला पुस्तक
का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

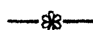
१९२३

प्रथम संस्करण] [मूल्य १)

Published by
K. K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

सूची



गल्प-गुच्छ

—:❀:—

द्वितीय भाग



बच्चा ।

(१)

रामचरन ने जब पहले पहल पण्डित त्रिभुवननाथ अवस्थी बैरिस्टर-एट-लॉ के यहाँ नौकरी की उस समय उसकी अवस्था बारह बरस की थी। वह उन्नाव ज़िले का रहने वाला था। लंबे बाल, बड़ी बड़ी आँखें और रंग चमकीला साँवला था। वह भी ब्राह्मण का लड़का था और उसके मालिक बैरिस्टर साहब भी ब्राह्मण थे। त्रिभुवननाथ के साल भर के एक लड़के को खिलाना और बहलाना ही उसका मुख्य काम था।

उस बच्चे ने यथासमय रामचरन की गोद से स्कूल में और स्कूल छोड़ कर कालेज में प्रवेश किया। वहाँ से भी पास होकर मुंसिफ़ होगया है। रामचरन इस समय भी उसका नौकर है।

पहले रामचरन का मालिक ही था, अब मालकिन भी आगई है। रामचरन के, गोद के खिलाये हुए, मालिक का नाम गौरीशङ्कर है। गौरीशङ्कर और उनकी स्त्री का काम तो रामचरन को अब घाते में करना पड़ता है। क्योंकि गौरीशङ्कर ने जो जगह ख़ाली कर दी थी वह जगह इस समय उनके पुत्र ने ग्रहण कर ली है। थोड़े दिन हुए, गौरीशङ्कर के एक लड़का हुआ है। रामचरन ने केवल अपनी चेष्टा और तत्परता से उसे बिलकुल अपने वश में कर लिया है।

रामचरन उस बच्चे को ऐसा उत्साह के साथ झुलाता है, ऐसी निपुणता के साथ उसे दोनों हाथों में लेकर ऊपर उछालता है, उसके मुँह के पास मुँह ले जाकर ऐसे टिटकारी लेकर सिर हिलाता है, उत्तर की कोई प्रत्याशा न करके ऐसे सुर से अनेक अर्थ-हीन असङ्गत प्रश्न करता है कि वह दुधमुहा बच्चा रामचरन को देखते ही पुलकित हो उठता है।

अन्त को जब वह बच्चा घुटनों के बल चल कर बड़ी सावधानी से चौखट नाँघ जाने और किसी के पकड़ने के लिए आने पर खिलखिला कर हँसते हुए जल्दी से किसी निरापद स्थान में लुकने की चेष्टा करने लगा तब रामचरन उसकी इस असाधारण चातुरी और विचारशक्ति को देखकर बहुत ही विस्मित हुआ। मालकिन के पास जाकर गर्व और विस्मय का भाव प्रकट करते हुए वह कहता था—बहू, तुम्हारा लड़का बड़ा होने पर जज होगा। पाँच हज़ार रुपये का महीना कमायगा।

रामचरन समझता था कि पृथ्वी पर और कोई आदमी का बच्चा इस अवस्था में चौखट नाँघना ऐसे असम्भव चातुर्य का परिचय नहीं दे सकता; केवल होनहार जजों के लिए ऐसा करना कुछ आश्चर्य नहीं है।

जब वह बच्चा लड़खड़ाते पैरों से चलने लगा तब वह दृश्य रामचरन को बहुत ही मनोहर जान पड़ता था। वह बच्चा जब माता को 'मा', बुआ को 'बू' और रामचरन को 'चन्न' कह कर पुकारने लगा तब तो रामचरन के आनन्द की सीमा नहीं रही। वह हर एक के आगे इस आश्चर्यमय समाचार की घोषणा करने लगा।

सब से बढ़ कर आश्चर्य की बात तो यह थी कि वह बालक माता को मा, और बुआ को बू कहता है, लेकिन रामचरन को कहता है 'चन्न!'। सचमुच यह कहना कठिन है कि उस बच्चे के मस्तक में ऐसी बुद्धि कहाँ से आई। अवश्य ही कोई सयाना आदमी कभी ऐसी अलौकिक प्रतिभा का परिचय न देता, और देता भी तो उसके जज का पद पाने की सम्भावना के सम्बन्ध में सर्वसाधारण को सम्पूर्ण रूप से सन्देह उपस्थित होता।

कुछ दिन बाद, मुँह में डोरी की लगाम पहन कर रामचरन को घोड़ा बनना पड़ता था। पहलवान बन कर उसे बालक के साथ कुश्ती लड़नी पड़ती थी। उस कुश्ती में रामचरन को हार कर ज़मीन में चित गिरना पड़ता था। इसी समय

गौरीशङ्कर (मुंसिफ़) की बदली हो गई। उन्हें बनारस जाना पड़ा।

वहाँ उनके भाग्य से काशी-नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी का स्थान खाली हुआ। काशी-नरेश से गौरीशङ्कर कई बार मिल चुके थे। इनकी मिलनसारी, चातुरी और नेकनामी के साथ काम करने की शक्ति पर वह मुग्ध थे। उन्होंने गौरीशङ्कर को अपने प्राइवेट सेक्रेटरी का पद दिया। गौरीशङ्कर रामनगर में जाकर रहने लगे।

गौरीशङ्कर बनारस से अपने लड़के के लिए एक ठेलने से चलनेवाली खुली गाड़ी लेगये। रेशमी कुर्त्ता, कामदार टोपी, हाथों में सोने के कड़े और पैरों में घुँघुरू पहनाकर रामचरन उस बालक को उसी गाड़ी पर बिठा कर सबेरे और शाम हवा खिलाने लेजाया करता था।

बरसात आई। गङ्गा बढ़ने लगी। धीरे धीरे एक एक करके किनारे के खेत और पेड़ वग़ैरह गङ्गा में डूबने लगे। दूर किनारे पर के कास और झाऊ भी पानी में अदृश्य हो गये। गङ्गा का गर्जन दूर दूर तक सुनाई पड़ने लगा। वेग से बहे जारहे फेने से नदी की तीव्र गति प्रत्यक्ष हो उठी।

तीसरे पहर बदली थी, लेकिन पानी बरसने की कोई सम्भावना न थी। रामचरन का छोटा मालिक नहीं माना। वह गाड़ी पर चढ़ कर बैठ गया। रामचरन धीरे धीरे गाड़ी ठेल कर नदी के किनारे पर उपस्थित हुआ। नदी-तट पर कोई

नाव न थी, मैदान में एक भी आदमी न था। दूसरे किनारे पर, काशी के ऊँचे ऊँचे मकानों पर पड़ रही अस्त हो रहे सूर्य की आभा बादल के बीच से देख पड़ी। चारों ओर सन्नाटा था। इसी बीच में बच्चे ने सहसा एक ओर उँगली उठाकर कहा—"चन्न, फू!"

थोड़ी ही दूर पर, पानी और कीचड़ से भरी भूमि पर, एक बड़ा भारी कदम्ब का पेड़ था। उसकी एक निचली डाल में फूल खिले हुए थे। वह बालक उधर ही देखकर उँगली का इशारा कर रहा था। दो चार दिन हुए, रामचरन ने लकड़ी के टुकड़ों में कदम्ब के फूल लगाकर एक छोटी सी गाड़ी बना दी थी। रस्सी बाँध कर उस गाड़ी को खींचने में वह बच्चा ऐसा ख़ुश हुआ कि उस दिन रामचरन को लगाम पहन कर घोड़ा नहीं बनना पड़ा। घोड़े से वह एकदम सईस के पद पर पहुँच गया।

कीचड़ मँझाकर फूल लेने जाने को रामचरन का जी न चाहा। जल्दी से उसने दूसरी ओर उँगली उठाकर बच्चे को बहलाने की नियत से कहा—"देखो देखो वह—यह देखो चिड़िया—वह उड़ गई! आरी चिड़िया आ आ।" इस प्रकार लगातार विचित्र कलरव करते करते ज़ोर से वह गाड़ी ठेलने लगा।

लेकिन आगे चलकर जिसके जज होने की सम्भावना हो उस बच्चे को इस तरह साधारण उपाय से बहलाने की चेष्टा

करना वृथा है—ख़ासकर वहाँ चारों ओर नेत्रों को अपनी ओर खींचने वाली कोई चीज़ न थी । रामचरन झूठ मूठ की चिड़िया दिखला कर अधिक देर तक उस बालक को बहला न सका ।

लाचार होकर रामचरन ने उस बालक से कहा—"अच्छा तुम गाड़ी पर बैठे रहो, मैं जल्दी से फूल लेकर आता हूँ । ख़बरदार, पानी के पास न जाना ।" यह कह कर घुटनों के ऊपर धोती चढ़ा कर रामचरन उस कदम्ब के पेड़ की ओर चला ।

लेकिन उसने यह बड़ी भारी भूल की कि जाते समय उस बालक को पानी के पास जाने के लिए मना कर गया । बालक का ध्यान कदम्ब के फूलों से हट कर पानी की ओर गया । उसने देखा, पानी खिलखिला कर हँसता सा नाचता चला जा रहा है । मानों बदमाशी करके किसी बड़े रामचरन के हाथ से छूटकर लाखों बालक हँसते हुए ताली बजा कर निषिद्ध स्थान की ओर तेज़ी से भागे जा रहे हैं ।

जल-प्रवाह के बुरे दृष्टान्त से मनुष्य-बालक का चित्त चञ्चल हो उठा । गाड़ी से धीरे धीरे उतर कर वह पानी के किनारे गया । किनारे पर फेना नाचता हुआ जा रहा था । बालक झुक कर उसे पकड़ने की चेष्टा करने लगा । दुरन्त जल-राशि मानों अव्यक्त कलरव से बार बार बालक को अपनी गोद में खेलने के लिए बुलाने लगा ।

एक बार किनारे पर कगारे की मिट्टी फटकर गिरने का ऐसा शब्द हुआ; लेकिन बरसाती नदी के किनारे इस तरह के न जाने कितने शब्द हुआ करते हैं! रामचरन ने बहुत से फूल तोड़ कर अपनी धोती की झोली में भर लिये। पेड़ पर से उतर कर हँसते हँसते गाड़ी के पास आकर उसने देखा, कोई नहीं है। घबराकर चारों ओर देखा, कहीं कोई न देख पड़ा।

रामचरन का मस्तक जैसे शून्य हो गया। आँखों के आगे अन्धकार छागया। भर्राई हुई आवाज़ में ज़ोर से वह चिल्ला उठा—बच्चा! बच्चा!

किन्तु 'चन्न' कह कर किसी ने जवाब नहीं दिया; कोई बालक खिलखिला कर नहीं हँसा। केवल गङ्गा पहले की तरह खिलखिलाती इतराती नाचती बही चली जा रही थी। जैसे वह कुछ जानती ही नहीं है। जैसे इन साधारण घटनाओं पर ध्यान देने का उसे घड़ी भर का भी अवकाश नहीं है।

शाम हो गई। बालक के लौट कर न आने से उसकी मा व्याकुल हो उठी। उसने दूसरा आदमी भेजा। लालटेन लिये हुए उस आदमी ने नदी के किनारे आकर देखा, रामचरन आँधी की तरह मैदान में इधर से उधर "बच्चा! मेरा बच्चा!" कहता दौड़ रहा है। चिल्लाने से उसका गला पड़ गया है।

अन्त को घर लौट कर रामचरन धड़ाम से मालकिन के पैरों के पास गिर पडा। जितनाही बालक की मा उसके बारे

में रामचरन से पूछती है उतना ही वह रोता है और कहता है—"मुझे नहीं मालूम बहू !"

यद्यपि मन ही मन सबको निश्चय होगया कि यह काम गङ्गा का ही है तथापि बालक की मा को यही सन्देह बना रहा कि रामचरन ने ही लड़के को कहीं चुरा रक्खा है। उसने रामचरन को बुला कर बहुत अनुनय विनय करके कहा—"तू मेरे बच्चे को ले आ, तू जितना रुपया माँगेगा, मैं दूँगी।" सुनकर रामचरन ने सिर पर हाथ दे मारने के सिवा और कुछ नहीं कहा। मालकिन ने उसे दुतकार दिया।

गौरीशङ्कर ने अपनी स्त्री के मन में रामचरन के प्रति जो सन्देह था उसे दूर करने की चेष्टा की। कहा—रामचरन ऐसी बेईमानी किस लिए करेगा ? स्त्री ने कहा—क्यों, वह सोने के गहने पहने था।

(२)

रामचरन अपने गाँव चला गया। इतने दिनों तक उसके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था और अवस्था देखकर होने की विशेष आशा भी नहीं थी। किन्तु भाग्य की बात कौन जान सकता है ? साल ही भर में उसकी स्त्री के एक लड़का पैदा हुआ और उसके बाद महीने ही भर के भीतर वह मर भी गई।

इस दुधमुहे बच्चे के प्रति रामचरन के मन में कुछ भी स्नेह न था। वह उस बच्चे को जैसे विद्वेष की दृष्टि से देखता था।

उसने जाना, यह बालक मानों छल करके 'बच्चा' के स्थान को लेने आया है। उसने समझा, मालिक के इकलौते लड़के को जल में बहा कर आप पुत्र-सुख भोगना एक महापातक है। रामचरन की विधवा बहन अगर न होती तो यह बालक बहुत दिन तक पृथ्वी पर न रह सकता।

आश्चर्य की बात यही है कि यह बालक भी कुछ दिन बाद चौखट पार होने और सब तरह मना करने पर उसे न मानने में कौतुक-पूर्ण चतुरता दिखलाने लगा। यहाँ तक कि इस बालक का बोल और रोने की आवाज़ भी उस बच्चे से बहुत मिलती थी। कभी कभी इस बालक का रोना सुन कर रामचरन का कलेजा धड़कने लगता था। उसे जान पड़ता था कि उसे न देखकर बच्चा कहीं रो रहा है।

मखोलिया—रामचरन की बहन ने उसका नाम मखोलिया रक्खा था—यथासमय बुआ को 'बू' कहने लगा। इस परिचित शब्द को सुनकर रामचरन जैसे चौंक पड़ा। उसने अपने मन में कहा—तब तो बच्चा मुझे भूल नहीं सका। यह बालक ज़रूर वही बच्चा है।

इस विश्वास के अनुकूल कई प्रबल युक्तियाँ थीं। एक, बच्चा के मरने के बाद ही, उसी साल, इसका जन्म हुआ है। दूसरे, इतने दिन बाद उसकी स्त्री के बच्चा हुआ है—यह उसकी स्त्री का गुण कभी नहीं हो सकता। तीसरे, यह बालक भी घुटनों के बल—लड़खड़ाते पैरों से भी—चलता है और बुआ

को बू कहता है! जिन लक्षणों से जज होने की सम्भावना हो सकती है उनमें से अधिकांश इसमें भी देख पड़ते हैं।

तब मालकिन के सन्देह की बात उसे एकाएक याद आगई। उसने अचम्भे में आकर मनही मन कहा—"आहा, बहू का मन उसी समय समझ गया था कि लड़के को किसी ने चुरा लिया है!" तब उसे इस बात के लिए बड़ा पछतावा हुआ कि इतने दिनों तक उसने लड़के को विद्वेष की—अनादर की—दृष्टि से क्यों देखा। बच्चे पर फिर उसका माया मोह बढ़ने लगा।

अब से रामचरन अपने लड़के को अमीरों के लड़कों की तरह रखने लगा। रेशमी कुर्त्ता और कोट बनवा दिया। कामदार टोपी कानपूर से ख़रीद लाया। स्त्री के गहने गलवा कर सोने के कड़े और चाँदी के छड़े बनवा दिये। रामचरन ख़ुद ही उस बालक को खिलाया करता था—महल्ले के किसी लड़के के साथ उसे खेलने नहीं देता था। महल्ले के लड़के मौक़ा मिलने पर नवाबज़ादा कह कर उस लड़के की हँसी उड़ाते थे और गाँव के आदमियों को रामचरन का यह पागलपन देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ।

मखोलिया जब पढ़ने लायक़ हुआ तब रामचरन सब घर बार और बाग़ वग़ैरह बेचकर लड़के को लेकर कानपुर चला गया। वहाँ बड़े कष्ट से एक नौकरी खोज कर आप नौकरी करने लगा और लड़के को स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया।

आप चाहे जिस तरह रहता था, लेकिन लड़के के अच्छी तरह खाने-पीने, पहनने और पढ़ने में कोई क़सर नहीं होने देता था ।

इस तरह बारह बरस बीत गये । लड़का मन लगाकर पढ़ता-लिखता था । देखने-सुनने में भी अच्छा हृष्ट-पुष्ट था । साफ़-साँवला रंग था । बाल बनाने और सफ़ाई से रहने पर उसकी विशेष दृष्टि रहती थी । मतलब यह कि वह हर तरह खुशमिज़ाज और शौक़ीन था । वह बाप को ठीक बाप की दृष्टि से नहीं देखता था । कारण, रामचरन बाप का ऐसा स्नेह करने पर भी नौकर की तरह उसकी सेवा किया करता था । एक और बात थी, रामचरन ने यह बात सबसे—लड़के से भी—छिपा रक्खी थी कि वह उस लड़के का बाप है । जिस घर में मखोलिया रहता था उसमें दस बारह स्कूली लड़के रहते थे । वे अक्सर देहाती रामचरन की रहन सहन पर हँसी मज़ाक़ किया करते और हँसते थे । पिता के न मौजूद होने पर मखोलिया भी उस बात चीत और हँसी में कभी कभी शामिल हो जाता था । लेकिन सीधे और स्नेहशील रामचरन को सब लड़के बहुत प्यार करते थे । मखोलिया भी प्यार करता था । परन्तु पहले ही कहा जा चुका है कि ठीक बाप की तरह नहीं, उस स्नेह में कुछ अनुग्रह मिला हुआ था ।

रामचरन बूढ़ा हो आया । उसका मालिक उसके काम में सदा दोष निकाला करता है । सच तो यह है कि उसका

शरीर भी शिथिल हो आया है, काम में अब वह उस तरह मन नहीं लगा सकता । किन्तु जो आदमी पूरी तनख़्वाह देता है वह बुढ़ापे का उज्र क्यों मानने लगा? इधर रामचरन ने घर बाग़ वग़ैरह बेचकर जो रुपया पाया था वह भी चुक चला । मखोलिया आज कल कपड़े-लत्ते की कमी के लिए उसपर बिगड़ा रहता है ।

(३)

एक दिन रामचरन ने एकाएक नौकरी छोड़ दी और मखो-लिया को कुछ रुपये देकर कहा—"ज़रूरत आ पड़ी है, मैं कुछ दिन के लिए गाँव जाता हूँ ।" यह कहकर वह बनारस पहुँचा । गौरीशङ्कर उस समय भी रामनगर में महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी थे ।

गौरीशङ्कर के और कोई लड़का-बाला नहीं हुआ । उनकी स्त्री के हृदय में अभी तक वह पुत्र-शोक का घाव वैसाही बना हुआ है ।

एक दिन शाम को आफ़िस से आकर गौरीशङ्कर घर में विश्राम कर रहे थे और मालकिन सन्तान की कामना से एक संन्यासी से तावीज़ और आशीर्वाद मोल ले रही थीं । इसी समय दरवाज़े पर रामचरन ने पुकारा—"भैयाजी" ।

गौरीशङ्कर ने समझा, कोई राजा साहब का आदमी है । इसलिए कहा—कौन है?

रामचरन भीतर चला आया और हाथ जोड़ कर बोला—मैं हूँ रामचरन।

बुड्ढे को देख कर गौरीशङ्कर को दया हो आई। उन्होंने "अब कहाँ है? कैसा है? क्या करता है?" इत्यादि अनेक प्रश्न करके अपने यहाँ फिर नौकरी करने का प्रस्ताव उपस्थित किया।

रामचरन ने बुझी हुई हँसी के साथ कहा—बहूजी कहाँ हैं?

गौरीशङ्कर उसे लेकर भीतर गये। बहू ने पहले की तरह प्रसन्नता के साथ बुड्ढे का आदर नहीं किया। रामचरन ने उस पर ध्यान न देकर हाथ जोड़ कर कहा—भैयाजी, बहूजी, मैंही तुम्हारे लड़के को चुरा ले गया था। न गङ्गा का यह काम था न और किसी का; मुझ अधम कृतघ्न का ही यह काम था।

गौरीशङ्कर चिहुँककर कह उठे—कहता क्या है? वह कहाँ है?

रामचरन ने कहा—जी, वह मेरे ही पास है। मैं परसों ले आऊँगा।

उस दिन शिवरात्रि की छुट्टी थी। आफ़िस नहीं जाना था। सबेरे से ही स्त्री-पुरुष दोनों खोये हुए पुत्र से मिलने के लिए उतावले हो रहे थे। दस बजे मखोलिया को साथ लिये रामचरन आकर उपस्थित हुआ।

गौरीशङ्कर की स्त्री ने कोई प्रश्न, कोई विचार, न करके उसे

गोद में बिठा लिया; और उसके अङ्गों पर हाथ फेर कर, उसका माथा सूंघ कर, अतृप्त दृष्टि से उसका मुँह निहार कर, रोकर, हँस कर वह ख़ुशी से पागल सी हो उठीं। लड़का देखने में अच्छा था। उसके साजसामान और रहन सहन में ग़रीबी की झलक बिलकुल नहीं पाई जाती थी। उसका प्यारा चेहरा और विनीत सलज्ज भाव देखकर गौरीशङ्कर को भी उस पर स्नेह हो आया।

तथापि उन्होंने अविचलित भाव धारण करके पूछा—कोई प्रमाण है ?

रामचरन ने कहा—ऐसे काम का प्रमाण क्या रह सकता है ? मेरी इस चोरी का हाल भगवान् ही जानते हैं; पृथ्वी पर और कोई नहीं जानता।

गौरीशङ्कर ने मन में विचारा कि उनकी स्त्री ने बालक को अपना ही समझ लिया है। अब प्रमाण ढूँढ़ने की चेष्टा करना ठीक नहीं, विश्वास कर लेना ही अच्छा है। इसके सिवा रामचरन को ऐसा लड़का ही कहाँ मिल सकता है ? फिर बूढ़ा नौकर अकारण दग़ाबाज़ी ही क्यों करने लगा ?—

लड़के से भी बातचीत करने पर उन्हें मालूम हुआ कि वह लड़कपन से ही रामचरन के पास है। वह रामचरन को अपना बाप ही समझता था, लेकिन रामचरन ने कभी उसके साथ पिता का ऐसा व्यवहार नहीं किया, उसका व्यवहार नौकरों का ऐसा रहा है।

गौरीशङ्कर ने मन से सन्देह दूर करके कहा—लेकिन रामचरन, तू हमारे यहाँ न रहने पावेगा।

रामचरन ने हाथ जोड़ कर गद्गद स्वर से कहा—मालिक, बुढ़ापे में कहाँ जाऊँगा ?

मालकिन ने कहा—अजी रहने भी दो! मेरे लड़के का भला हो! मैं उसे माफ़ करती हूँ।

न्याय-परायण गौरीशङ्कर ने कहा—उसने ऐसा काम किया है कि माफ़ नहीं किया जा सकता।

रामचरन ने गौरीशङ्कर के पैर पकड़ कर कहा—मैंने नहीं किया, जो कुछ किया ईश्वर ने किया।

अपना पाप ईश्वर के सिर लादने की चेष्टा करते देखकर गौरीशङ्कर को और भी क्रोध हो आया। उन्होंने कहा—ऐसे विश्वासघात का काम करनेवाले पर किसी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता।

रामचरन ने मालिक के पैर छोड़ कर कहा—चोर मैं नहीं हूँ मालिक!

गौरीशङ्कर ने कहा—फिर कौन है ?

रामचरन ने कहा—मेरा भाग्य।

किन्तु ऐसी कैफ़ियत से किसी शिक्षित पुरुष को सन्तोष नहीं हो सकता।

मखोलिया ने जब देखा कि वह एक राज्य के प्राइवेट सेक्रेटरी का लड़का है, रामचरन ने चोरी करके—अब तक अपना

लड़का बना कर उसका अपमान किया है, तब उसे भी रामचरन के ऊपर कुछ खीझ पैदा हुई। लेकिन तो भी उदारभाव से उसने पिता से कहा—बाबूजी, उसे माफ़ कर दीजिए। घर में न रहने दीजिए, लेकिन कुछ मासिक सहायता का प्रबन्ध कर दीजिए।

इसके बाद कुछ न कह कर रामचरन ने एक बार लड़के का मुख देखा, सबको प्रणाम किया और फिर बाहर आकर न जाने कहाँ चला गया।

महीने भर के बाद गौरीशङ्कर ने रामचरन को, उसके गाँव के पते पर, पाँच रुपये भेजे। रुपये लौट आये। वहाँ रामचरन नहीं था।

———

पोस्टमास्टर।

(१)

नौकरी शुरू होते ही पोस्टमास्टर को बनगाँव के डाकख़ाने में काम करने के लिए आना पड़ा। गाँव बहुत ही छोटा है। पास ही एक बड़े सौदागर की ग़ल्ला ख़रीदने की कोठी थी। उसी कोठी के मैनेजर ने लिखा-पढ़ी करके यह डाकख़ाना क़ायम कराया है।

हमारे पोस्टमास्टर बाबू शहर के लड़के थे। जल की मछली को डोंगी पर डाल देने से उसकी जो दशा होती है वही दशा, इस छोटे से गाँव में आने से, पोस्टमास्टर की भी हुई। एक अन्धकारमय छप्पर के नीचे उनका दफ़्तर है। थोड़ी दूर पर एक गढ़ैया है। आस पास खेत, बाग़ और जङ्गल देख पड़ता है। कोठी के गुमाश्ते और मेहनत मजूरी करने वाले नीच जाति के लोग ही अधिकतर वहाँ रहते हैं। गुमाश्ते वग़ैरह कुछ रूखी तबियत के और घमंडी हैं; रहे छोटी जाति के लोग, सो वे हेलमेल के लायक़ नहीं।

इन लोगों के अलावा ब्राह्मणों और ठाकुरों के भी दो चार घर हैं। लेकिन पोस्टमास्टर बाबू अच्छी तरह मिलना जुलना नहीं जानते। किसी अपरिचित स्थान में जाकर अपने

आप मिलने-जुलने का उन्हें अभ्यास नहीं। यही कारण है कि अब तक उनसे किसी से अधिक हेलमेल नहीं हो सका।

डाकखाना छोटा है, काम भी बहुत नहीं। फ़ुरसत के वक़्त कभी कभी पोस्टमास्टर बाबू एक-आध कविता लिखने के लिए बैठते हैं। उस कविता में उन्होंने ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं कि दिन भर पत्तों का हिलना और ढेर के ढेर बादल देखने में जीवन बड़े सुख से बीतता है—लेकिन वही अन्तर्यामी जानते हैं कि अगर "अलिफ़लैला" (सहस्र रजनी-चरित्र) का कोई दैत्य आकर एक ही रात में इन शाखा-पल्लव-समेत सारे पेड़ों को काट कर पक्की सड़क बना दे, और पाँत की पाँत ऊँचे महल खड़े करके बादलों को दृष्टि से दूर करदे तो इस अधमरे मनुष्य की जैसे जान बच जाय।

पोस्टमास्टर को तनख्वाह थोड़ी ही मिलती है। वह अपने ही हाथ पहले चौका-बासन भी कर लेते थे। अब, कुछ दिनों से, यह प्रबन्ध होगया है कि गाँव की एक अनाथ लड़की चौका-बर्तन और रसोई का सामान कर देती है। इसके लिए उसे चार रोटियाँ मिलती हैं। लड़की का नाम हीरा है। वह जाति की अहीर है। अवस्था बारह-तेरह बरस की होगी। पहले मा मरी, पीछे बाप और भाई मरा; अब वह अनाथ है। ब्याह की भी विशेष सम्भावना नहीं है।

सन्ध्या के समय जब गाँव के घरों में छप्परों के ऊपर धुआँ

मँडलाता था, चारों ओर मेंढकों की आवाज़ गूँज उठती थी, दूर पर बैरागी बाबा की कुटी में गाँजे के दम लगाये हुए बैरागी झाँझ और करताल बजाकर ऊँचे स्वर से रामायण का पाठ शुरू कर देते थे—जब अन्धकार में कुर्सी पर अकेले बैठ कर वृक्षों का हिलना देखने से कवि का हृदय भी कुछ चञ्चल हो उठता था, तब उस कच्चे घर में एक टिमटिमा रहा दीपक जला कर पोस्टमास्टर पुकारते थे "हीरा !" हीरा दरवाज़े पर बैठी हुई इस पुकार की राह देखा करती थी। लेकिन एक ही बार पुकारने से भीतर न आती थी। कहती थी—क्यों, क्या है बाबू ?

पोस्टमास्टर—तू क्या कर रही है ?

हीरा—क्या अभी चूल्हा जलाना होगा ? मैं ज़रा गुड़िया के कपड़े—

पोस्टमास्टर—गुड़िया के कपड़े फिर बनाना, पहले एक चिलम भर दे।

तुरन्त ही एक हाथ में नारियल और दूसरे हाथ में चिलम लिये, आग फूँकती हुई, हीरा भीतर आती थी। उसके हाथ से हुक्का लेकर पोस्टमास्टर बाबू पूछने लगते थे—अच्छा हीरा, तुझे अपने मा-बाप की याद आती है ?

उसके मा-बाप बचपन में ही मर गये थे। मा की उसे कुछ धुँधली धुँधली याद है। बाप उसे मा से बढ़ कर चाहता था, उसका चेहरा बालिका के हृदय-पट पर अच्छी तरह

अङ्कित है। उसका बाप मेहनत मजूरी करके शाम को घर लौट आता था। ऐसी दो एक सन्ध्याएँ उसके हृदय-पट पर बहुत अच्छी तरह अङ्कित हैं।

इन बातों को करते करते हीरा पोस्टमास्टर के पैरों के पास ज़मीन पर बैठ जाती थी। उसे अपने छोटे भाई की याद हो आती थी। उसका छोटा भाई और वह, दोनों बरसात में इधर उधर भीगते और बीर-बहूटी वग़ैरह को पकड़ते फिरते थे। सबसे अधिक स्पष्ट रूप से उसे यही बात याद थी। यह घटना जैसे उसकी आँखों के आगे नाचने लगती थी।

इसी तरह बातें होते होते कभी कभी रात के नौ दस बज जाते थे। पोस्टमास्टर बाबू को आलस्य आ जाता था। रोटी नहीं बनती थी। चने भिगोकर या आलू भून कर हीरा ले आती थी। इसीसे काम चल जाता था।

कभी कभी शाम को उसी छप्पर के नीचे कुर्सी पर बैठे हुए पोस्टमास्टर भी हीरा के पूछने पर अपने घर का हाल कहने लगते थे। बड़ी बहन, छोटे भाई और मा की बातें—परदेस में जिनके लिए हृदय व्याकुल हो उठता था उनकी बातें करते थे। मन की जिन बातों को सुनने वाला इस परदेस में और कोई न था उन्हीं बातों को इस अशिक्षित देहात की लड़की के आगे पोस्टमास्टर बाबू बिना किसी संकोच के कह सुनाते थे। अन्त को ऐसा हुआ कि ऐसी बातचीत के समय हीरा पोस्टमास्टर के घर के आदमियों को चिर-परिचित की तरह अम्मा, दीदी, दादा

कहकर उनका उल्लेख करने लगी। यहाँ तक कि उसने अपने छोटे से हृदय में पोस्टमास्टर के परिवार का एक कल्पित चित्र भी अङ्कित कर लिया।

एक दिन बरसात में दोपहर के समय बादल बिल्कुल नहीं था। कुछ गर्म हवा चल रही थी। घाम लगने से भीगी हुई घास और पेड़ों से एक तरह की गन्ध उठ रही थी। जान पड़ता था कि थकी हुई पृथ्वी की गर्म साँस शरीर में लग रही है। एक चिड़िया बारबार करुण स्वर से मानों प्रकृति के दरबार में नालिश कर रही थी। पोस्टमास्टर के पास उस दिन कुछ काम न था। उस दिन वर्षा से धुले हुए हरे चिकने पेड़ के पत्तों का हिलना और बरसे हुए बादलों के भग्नावशिष्ट ढेर सचमुच देखने ही लायक़ थे। पोस्टमास्टर बाबू यही सब देख रहे थे और सोचते थे कि इस समय पास कोई अपना बहुत ही सगा आदमी होता—हृदय में रहनेवाली कोई प्रेममयी षोडशी रमणी होती तो क्या कहना था! धीरे धीरे उन्हें जान पड़ने लगा, वह चिड़िया बार बार अपनी बोली में यही कह रही है—इस जनहीन और वृक्षों की छाँह में छिपे हुए मध्याह्न काल में पत्तों के हिलने का भी यही अर्थ है।

पोस्टमास्टर ने एक लम्बी साँस लेकर पुकारा—"हीरा!" हीरा उस समय अमरूत के नीचे पैर फैलाये अमरूत खा रही थी। मालिक की आवाज़ सुन कर वह दौड़कर आई और हाँफते हाँफते कहने लगी—"बाबूजी, आप पुकारते हैं?"

पोस्टमास्टर ने कहा—हाँ, मैं तुझे थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना सिखाऊँगा ।

उस दिन दोपहर भर वह हीरा को "अ आ इ ई" पढ़ाने में लगे रहे । धीरे धीरे हीरा ने संयुक्त अक्षर पहचान लिये ।

सावन के महीने में ऐसी वर्षा हुई कि गढ़ों, झीलों और नालों में पानी ही पानी देख पड़ने लगा । दिन-रात मेंढकों की आवाज़ और पानी बरसने का शब्द सुन पड़ता है । पानी भर जाने से गाँव की राह में आना-जाना एक प्रकार से बन्द ही होगया था ।

एक दिन सबेरे से ही ख़ूब बादल घिरे हुए थे । पोस्टमास्टर की छात्री बहुत देर से दरवाज़े के पास बैठी हुई पुकारने की राह देख रही थी । लेकिन और दिनों की तरह यथासमय पुकार न हुई । तब वह ख़ुद पोथी का बस्ता लिये भीतर गई । जाकर उसने देखा, पोस्टमास्टर खटिया पर पड़े हुए हैं । उसने समझा कि बाबू विश्राम कर रहे हैं । वह चुपचाप दबे पैरों लौट पड़ी । सहसा उसे सुन पड़ा—"हीरा" ! जल्दी से लौट कर पास जाकर हीरा ने कहा—"बाबू जी, आप सो रहे थे ?" पोस्टमास्टर ने कातर स्वर से कहा—आज तबियत अच्छी नहीं मालूम होती । मेरे सिर पर हाथ रख कर देख तो ।

ऐसे बिल्कुल सङ्गहीन परदेस में, घनी बरसात में, तबियत अच्छी न होने पर किसी सेवा करने वाले 'अपने' की जरूरत जान पड़ती है । गर्म मस्तक पर चूड़ी-पहने कोमल

हाथ का स्पर्श याद आता है। यह समझने की इच्छा होती है कि इस घोर प्रवास में, रोग-यन्त्रणा की अवस्था में, स्नेहमयी नारी के रूप से माता और बहन पास बैठी हुई हैं। यहाँ भी परदेसी की अभिलाषा व्यर्थ नहीं हुई। हीरा उस समय पहले की तरह बालिका नहीं रही। उसी घड़ी उसने माता और बहन का रूप धारण कर लिया। वह वैद्य को बुला लाई, वैद्य के कहे अनुसार यथासमय गोलियाँ खिलाईं, रात भर सिरहाने बैठी रही और सैकड़ों बार पूछा—बाबू जी, अब कुछ आराम है ?

कई दिनों के बाद पोस्टमास्टर आराम हुए। लेकिन कमज़ोरी उस समय भी बहुत थी। पोस्टमास्टर ने अपने मन में कहा—अब बस, यहाँ से किसी तरह बदली करा लेनी चाहिए। बनगाँव की आबहवा स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं है, इस बात का उल्लेख करके पोस्टमास्टर ने सदर डाकख़ाने को बदली के लिए अर्ज़ी भेजी।

रोगी की सेवा से छुट्टी हो जाने पर फिर हीरा वहीं, दरवाज़े के बाहर, रहने लगी। लेकिन आजकल पहले की तरह वह पुकारी नहीं जाती। बीच बीच में झाँक कर देखती है, पोस्टमास्टर अन्यमनस्क भाव से या तो क़ुर्सी पर बैठे हैं और या खटिया पर लेटे हैं। हीरा जिस समय अपने पुकारे जाने की आशा लगाये बैठी थी उस समय पोस्टमास्टर बाबू चञ्चल चित्त से चिन्ता के साथ अपनी अर्ज़ी के उत्तर की प्रतीक्षा

कर रहे थे। बालिका हीरा ने दरवाज़े पर बैठ कर बार बार हज़ार बार अपना पुराना पाठ पढ़ा। उसे यह खटका था कि मास्टर साहब किसी दिन बुला कर परीक्षा न लें और उस समय युक्त अक्षर पहचानने में कहीं भूल न हो जाय। अन्त को एक हफ्ते के बाद हीरा की पुकार हुई। उमड़े हुए हृदय को लिये हीरा घर के भीतर गई।

पोस्टमास्टर ने कहा—हीरा, कल मैं यहाँ से चला जाऊँगा।

हीरा—कहाँ जाइएगा बाबूजी ?

पोस्टमास्टर—घर जाता हूँ।

हीरा—अब कब आइएगा ?

पोस्टमास्टर—अब न आऊँगा।

हीरा ने और कुछ नहीं पूछा। पोस्टमास्टर ने आपही उससे कहा—"मैंने बदली के लिए अर्जी दी थी, अर्ज़ी नामंज़ूर हो गई है। इसीसे अब मैं नौकरी छोड़ कर घर जा रहा हूँ।" बहुत देर तक किसी ने कोई बात नहीं की। दीपक टिमटिमाता हुआ जल रहा था। घर के पुराने छप्पर के छेद से एक मिट्टी के सकोरे के ऊपर टप टप करके पानी टपक रहा था।

कुछ देर बाद हीरा धीरे धीरे उठ कर रसोई-घर में दूध औटाने के लिए गई। और दिन की तरह आज चटपट दूध का औटाना नहीं हुआ। शायद बीच बीच में उसके हृदय में अनेक चिन्तायें उठ रहीं थीं। पोस्टमास्टर के दूध पी चुकने पर हीरा

ने एकाएक उनसे पूछा—बाबूजी, मुझे अपने घर ले चलिएगा ?

पोस्टमास्टर ने हँस कर कहा—यह कैसे हो सकता है ?

उसे किन किन कारणों से लेजाना असम्भव है, यह समझाने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी।

रात-भर सोते और जागते में बालिका के कानों में पोस्टमास्टर की हँसी और ये शब्द गूँजते रहे कि "यह कैसे हो सकता है ?"

सबेरे उठ कर पोस्टमास्टर ने देखा, उनके नहाने के लिए कुएँ का पानी भरा रक्खा है, उनकी धोती भी चुनियाई हुई रक्खी है। नित्य के अभ्यास के अनुसार पोस्टमास्टर ने स्नान किया। न जाने किस कारण से हीरा यह नहीं पूछ सकी थी कि पोस्टमास्टर किस समय जायँगे। शायद सबेरे नहा खा कर जायँ, यही सोच कर बालिका रात ही को दूर पर क मीठे कुएँ से पानी भर लाई थी। स्नान कर चुकने के बाद पोस्टमास्टर ने हीरा को पुकारा। हीरा चुपचाप घर के भीतर गई और आज्ञा की प्रतीक्षा में उसने चुपचाप एक बार पोस्टमास्टर के मुख की ओर देखा। पोस्टमास्टर ने कहा—"हीरा, मेरी जगह पर जो आदमी आवेगा उससे मैं कह जाऊँगा कि वह मेरे ही समान तेरा ख़याल रक्खे। मेरे जाने से तुझे कुछ असुविधा न होने पावेगी।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये बातें अत्यन्त स्नेह और दया से भरी थीं; लेकिन स्त्री के हृदय को

कौन जान सकता है ? हीरा ने कई बार मालिक की डाँट डपट को चुपचाप सह लिया है, लेकिन आज वह इन नर्म बातों को न सह सकी। एक बार उच्छ्वसित हृदय से वह रो उठी और बोली—ना ना, आप किसी से कुछ न कहें, मैं यहाँ रहना नहीं चाहती।

पोस्टमास्टर ने हीरा का ऐसा व्यवहार कभी नहीं देखा था, इसी से वह जैसे सन्नाटे में आगये।

नये पोस्टमास्टर आगये, उनको चार्ज देकर पुराने पोस्टमास्टर जाने के लिए तैयार हुए। जाते समय हीरा को बुलाकर कहा—हीरा, तुझे मैं कभी कुछ दे नहीं सका। आज तुझे कुछ दिये जाता हूँ, इससे कुछ दिन तक तेरा गुज़र हो सकता है।

राह-खर्च निकाल कर तनख़्वाह के सब रुपये जेब से निकाले। तब हीरा ने ज़मीन पर लोट कर पोस्टमास्टर के दोनों पैर पकड़ कर कहा—"बाबूजी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे कुछ न दीजिएगा। मेरे लिए किसी को कुछ चिन्ता न करनी पड़ेगी।" यह कह कर हीरा वहाँ से दौड़ लगा कर भाग गई।

भूतपूर्व पोस्टमास्टर साहब ने एक साँस ली। इसके बाद हाथ में एक बेग लेकर, बग़ल में छाता दबा कर, क़ुली के सिर पर नीली और सफ़ेद धारियों से चित्रित ट्रंक लदवा कर वह धीरे धीरे नदी-तट की ओर चले। राह में नदी पड़ती थी। इसके बाद दो तीन फ़र्लांग पर स्टेशन था। नदी गर्मि[illegible] अनेक बिल्कुल सूख जाती है। लेकिन बरसात में बड़ा विक[illegible] [illegible]ीर

धारण कर लेती है। बनगाँव से स्टेशन तक जलमय देख पड़ता है।

नाव पर चढ़ते ही भरी हुई नाव खोल दी गई। बरसात में उमड़ी हुई नदी पृथ्वी की अश्रुराशि के समान चारों ओर छलक रही थी। उसे देख कर पोस्टमास्टर को अपने हृदय में एक प्रकार की कठिन वेदना का अनुभव हुआ। एक मामूली देहाती लड़की का करुण चेहरा उनकी आँखों के आगे आकर जैसे एक विश्वव्यापी बड़ी भारी अव्यक्त मर्म-व्यथा प्रकट करने लगा। एक बार बड़ी ही इच्छा हुई कि लौट चलें, जगत् की गोद से बिछड़ी हुई उस अनाथ लड़की को साथ ले आवें। लेकिन उस समय नाव नदी के प्रवाह में पड़ चुकी थी। गाँव के किनारे मसान देख पड़ा। नदी के प्रवाह में जा रहे पथिक के उदास हृदय में इस तत्व का उदय हुआ कि जीवन में इस तरह के कितने ही वियोग और मृत्यु हैं, लौटने से क्या लाभ! पृथ्वी पर कौन किसका है?

किन्तु हीरा के मन में किसी तत्व का उदय नहीं हुआ। वह उसी डाकखाने के चारों ओर आँसू बहाती हुई चक्कर लगा रही थी। कदाचित् उसके मन में यह क्षीण आशा जग रही थी कि "बाबूजी शायद लौट आवें।" इसी बन्धन में पड़ कर वह दूर किसी तरह नहीं जा सकती थी। हाय बुद्धिहीन मनुष्य-हृदय! "[illegible]व किसी तरह नहीं मिटती, युक्तिशास्त्र का विधान बहुत असुवि[illegible] समझ पड़ता है, प्रबल प्रमाण पर भी विश्वास न करके बाते[illegible]

मिथ्या आशा को दोनों हाथों से पकड़ कर हृदय के भीतर रखने की प्राणपण से चेष्टा की जाती है; अन्त को एक दिन सारी नाड़ियों को काट कर हृदय का रक्त सोख कर वह भाग जाती है, तब चेतना होती है और दूसरे भ्रान्ति-पाश में पड़ने के लिए चित्त व्याकुल हो उठता है !

दहेज ।

पाँच लड़कों के बाद एक लड़की पैदा होने से मा और बाप ने उसका नाम रक्खा दुलारी । इस घर में ऐसा शौक़ का नाम और किसी का कभी नहीं रक्खा गया । प्राय: देवतों के नाम ही अधिक प्रचलित थे; यथा—गणेश, गोवर्द्धन, गौरी, गङ्गा इत्यादि ।

अब दुलारी ब्याहने लायक़ हुई है । उसके पिता गोवर्द्धन मिश्र ने बहुत छान-बीन की है, लेकिन आसपास कोई अपने मन का लड़का नहीं मिलता । अन्त को खोजते खोजते एक वकील साहब का लड़का पसन्द आया । यद्यपि वकील साहब के पढ़-लिख कर वकील होने के ख़र्चे में उनके बाप-दादे की जमा का बहुत सा हिस्सा चला गया है, लेकिन घराना बहुत ही प्रतिष्ठित है । लड़के के बाप दुर्गाशङ्कर वाजपेयी कई बरसों से वकालत कर रहे हैं, लेकिन अभी तक एक भी मुक़द्दमा ऐसा उन्होंने नहीं चलाया जिसमें वकील बनने के लिए उन्हें ख़ुद कोशिश न करनी पड़ी हो । इसीसे पाठकगण उनकी आमदनी का अनुमान कर ले सकते हैं । कुलीन वाजपेयीजी ने सम्बन्ध-प्रार्थी धाकर से तीन हज़ार नक़द और दो हज़ार के गहने दहेज में माँगे । सुनकर एक बार तो गोवर्द्धन को कुछ आश्चर्य हुआ । वह समझते थे कि वकील साहब पढ़े-लिखे समझदार और

एक कान्यकुब्ज सभा के शायद मन्त्री भी हैं; ठहरौनी के बारे में इतने कड़े न होंगे। एक आध बार सकुचते हुए गोवर्द्धन ने बातों बातों में कुछ कम करने का इशारा किया। लेकिन वह सब वकील साहब ने हँसी में उड़ा दिया।

*

गोवर्द्धन के दस हज़ार रुपये पीपुल्स बैंक में जमा थे। घर बार मिला कर छः सात हज़ार की और भी सम्पत्ति थी। वह ख़ुद वैद्य थे, लेन-देन भी करते थे, अच्छी आमदनी थी। दरवाज़े पर जाकर लौटना और ऐसे घर, वर को हाथ से जाने देना ठीक न समझ कर उन्होंने तीन हज़ार नक़द और दो हज़ार के गहने देना स्वीकार कर लिया। "बरिच्छा" का रुपया दे आये।

"फलदान" होजाने के बाद एक दिन गोवर्द्धन के भाग्य ने विचित्र पल्टा खाया। बैंक ने दिवाला निकाल दिया। गोवर्द्धन कलेजा पकड़ कर रह गये, लेकिन थे बड़े ही दृढ़ आदमी। लगभग दो हज़ार के गहने थे। गहनों के लिए उतनी चिन्ता न थी। उन्हें नक़द तीन हजार की चिन्ता हुई। ब्याह का दिन निकट आ रहा था। गोवर्द्धन को अपनी बात का ख़याल था। लड़की का ब्याह तो करना ही पड़ेगा। लड़का हाथ से निकल जाने पर फिर वैसा लड़का मिलना कठिन होजायगा। गोवर्द्धन ने बड़ी मुशकिल से लहने से पाँच सौ रुपये वसूल कर पाये। दो हज़ार रुपये ज़मीन और बाग़ रेहन करके जमा किये। अब भी डेढ़ हज़ार की क़सर रह गई। क्योंकि एक

हज़ार के लगभग खिलाई-पिलाई में भी ख़र्च होगा। कुल चार हज़ार चाहिए।

ब्याह का दिन आ गया। एक आदमी ने बहुत ज्यादह दर से सूद लेकर डेढ़ हज़ार रुपया देना स्वीकार किया था। लेकिन ठीक समय पर उसने कह दिया कि रुपये नहीं हैं।

इधर वकील साहब ने यह पेच किया कि सब रुपये और ज़ेवर पहले जनवासे में आजायगा तब लड़का चौक पर जायगा। गोवर्द्धन काँपते हुए डेढ़ हज़ार रुपये और ज़ेवर लेकर जनवासे गये और समधी के पैर पकड़कर कहने लगे—"अब मेरी इज्जत आप ही के हाथ है। ब्याह हो जाने दीजिए। बाक़ी डेढ़ हज़ार रुपये मैं पीछे से चुका दूँगा।" लेकिन इस अनुनय-विनय का कुछ भी फल नहीं हुआ। वकील साहब और उनके कुछ वृद्ध अनुयायियों ने "पत्थर की लीक" के तौर पर कह दिया कि ठहरौनी का सब रुपया जमा हुए बिना ब्याह कभी नहीं हो सकता। गोवर्द्धन ने बैंक के दिवालिया होजाने का उल्लेख करके अपनी मजबूरी ज़ाहिर की तो उसके उत्तर में यह सुनने को मिला कि फिर क्यों कुलीनों के घर शादी की थी? वकील साहब को तो शायद विश्वास ही नहीं हुआ। उन्होंने यही समझा कि दग़ाबाज़ समधी ने यह भी एक झूठा क़िस्सा गढ़ा है।

इस दुर्घटना से मिश्रजी के घर उदासी छा गई। इस भारी विपत्ति का मूल-कारण कन्या भी वधू-वेश में चुपचाप बैठी हुई

सब बातें सुन रही थी। अपने ससुर के ऊपर उसे भक्ति थी या घृणा, सो परमेश्वर ही जाने।

इस बीच में गोवर्द्धन के पुण्यबल से लड़का अपने बाप से बदल गया। वह बाप से कह बैठा कि रुपये-पैसे की बात मैं नहीं जानता। ब्याह करने आया हूँ, ब्याह करके जाऊँगा।

बाप बरातियों से कहने लगा—"देखते हैं आप आज कल के छोकरों का हाल।" जो दो एक बुड्ढे थे वे कहने लगे—एक दम घोर कलियुग आगया है।

अपने लड़के में वर्त्तमान शिक्षा का विषमय फल फलते देखकर वकील साहब मन्त्र से विवश सर्प की तरह लम्बी लम्बी साँसें लेने लगे। एक प्रकार के निरानन्द भाव से विषाद की छाया में ब्याह हो गया।

सुसराल जाते समय दुलारी को छाती से लगा कर मा और बाप दोनों रोने लगे। दुलारी ने पूछा—"वे लोग क्या मुझे अब यहाँ आने न देंगे दादा?" गोवर्द्धन ने कहा—आने क्यों न देंगे बेटा? मैं ख़ुद तुमको ले आऊँगा।

ब्याह के बाद गोवर्द्धन अक्सर लड़की को देखने के लिए समधियाने जाया करते थे। लेकिन उनकी वहाँ कुछ इज़्ज़त नहीं थी। उन्होंने इसी लिए शहर में, थोड़े ही फ़ासले पर, लड़की ब्याही थी कि जब चाहेंगे उसे देख आयेंगे या बुलालेंगे। लेकिन उनको वह सुभीता नहीं प्राप्त हुआ। वकील साहब के घर के नौकर तक उन्हें नीची नज़र से—तुच्छ-दृष्टि से—

देखते हैं। बैठकख़ाने के पिछवाड़े एक छोटा सा अलग मकान था। वहीं कभी, पाँच मिनट के लिए, उन्हें अपनी लड़की देखने को मिल जाती है। कभी केवल अपमान और निराशा ही हाथ लगती है।

रिश्तेदारी में, ख़ास कर समधी के यहाँ, अपना अपमान गोवर्द्धन को असह्य हो उठा। उन्होंने अपने मन में कहा—जिस तरह हो, दहेज के रुपये चुका देने चाहिए।

किन्तु इधर पहले ही का ऋण सिर पर सवार है, और उसका सूद "घोड़े की दौड़" चल रहा है। डेढ़ हज़ार रुपये जो वाजपेयीजी ने वापस कर दिये थे वे भी लगे हाथ ख़र्च हो गये। इसलिए वाजपेयीजी के पूरे तीन हज़ार देने हैं। इस समय बैदकी वैसी चलती नहीं और अब महाजनी होती नहीं। ख़र्च की भी तङ्गी है। जिनका रुपया बाक़ी है उनकी नज़र से बचने के लिए भी सदा तरह तरह के हीन कौशलों का सहारा लेना पड़ता है।

इधर लड़की को सुसराल में उठते-बैठते ताने और गालियाँ सुनने को मिलती हैं। बाप के घर की निन्दा सुनकर कोठरी में दरवाज़े बन्द करके रोना उसका नित्य का काम होगया है।

ख़ास कर सास की खीझ तो किसी तरह मिटती ही नहीं। अगर कोई दुलहिन को देखकर कहता है कि "वाह कैसी सुन्दर लड़की है! बहू का चेहरा और अङ्गों की गढ़न बहुत ही सुडौल है!" तो सासजी झनक कर कह उठती हैं—

सुन्दरापा तो फूटा पड़ता है! जैसे घर की लड़की है वैसा ही चेहरा है!

यहाँ तक कि बहू के खाने-पीने पर भी उतना ध्यान नहीं दिया जाता। अगर कभी कोई परोसिन दया के मारे बहूका पक्ष लेकर किसी त्रुटि का उल्लेख करती है तो सासजी कहती हैं—"उसके लिए इतना ही काफ़ी है!" अर्थात् उसका बाप अगर पूरे दाम देता तो उसकी लड़की के आराम पर भी पूरा ध्यान दिया जाता। घर के नौकर-चाकर तक ऐसा भाव दिखाते हैं कि मानों बहू का सुसराल में कोई अधिकार नहीं है, वह जैसे धोखा देकर—जालसाज़ी करके—घुस आई है!

जान पड़ता है, लड़की के इस अनादर और अपमान की बात बाप के कान तक पहुँची होगी। इसीसे गोवर्द्धन अन्त को अपने रहने का घर बेचने की चेष्टा करने लगे।

लेकिन उन्होंने लड़कों से यह बात छिपा रक्खी कि मैं तुमको बे-घर बार का बना रहा हूँ। उन्होंने यह सोचा कि मकान बेच कर उसीमें किराया देकर रहूँगा और ऐसे कौशल से चलूँगा कि मेरे मरने के समय तक लड़कों को इस बात की ख़बर न होगी।

किन्तु लड़कों को मालूम ही होगया। सब आकर रोने धोने लगे। ख़ास कर दोनों बड़े लड़के ब्याहे थे, उनमें से जेठे के दो बच्चे भी थे। उनके बेहद रोक टोक करने पर घर का बिकना रुक गया।

तब गोवर्द्धन जगह जगह से, ज्यादह सूद देकर तमस्सुक लिख कर, थोड़ा थोड़ा रुपया क़र्ज़ लेने लगे। धीरे धीरे ऐसा हुआ कि गिरिस्ती का ख़र्च चलना कठिन हो गया।

बाप का चेहरा देख कर दुलारी सब समझ गई। अकाल-वृद्ध गोवर्द्धन के पके केश, सूखे मुख और सदा संकुचित भाव ने उनकी दीनता और चिन्ता को प्रकट कर दिया। अपराधी बाप का पश्चात्ताप कन्या से छिप नहीं सका। गोवर्द्धन जब अनुनय विनय के बाद कभी दम भर के लिए लड़की को उसकी सुसराल में देख पाते थे उस समय उनकी मिटी हुई हँसने की चेष्टा से ही मालूम पड़ जाता था कि उनका हृदय चिन्ता और क्षोभ से फटा जा रहा है।

व्यथित पिता को सान्त्वना देने के इरादे से कुछ दिनों के लिए मैके जाने को दुलारी बहुत ही उत्कण्ठित हो उठी। बाप का शीर्ण शिथिल चेहरा देख कर उससे रहा नहीं जाता। एक दिन मुलाक़ात होने पर उसने पिता से कहा—मैंने बहुत दिनों से अम्मा को नहीं देखा, देखने को जी चाहता है।

गोवर्द्धन ने कहा—अच्छा, मैं तुमको जल्द ही बुला लूँगा।

कह तो दिया, लेकिन लड़की को लेजाने का अधिकार उनके हाथ में नहीं है। उनका कुछ ज़ोर नहीं है। कन्या के ऊपर पिता का जो स्वाभाविक अधिकार होता है उसको मानों दहेज के रुपयों के लिए रेहन रख देना पड़ा है। यहाँ तक कि बेटी को देखने के लिए भी उन्हें बड़े संकोच के साथ भीख सी

माँगनी पड़ती है। कभी कभी उस भीख से निराश होने पर भी कुछ कहने का मुँह नहीं है।

लेकिन लड़की ख़ुद जब कह रही है कि मैं घर चलूँगी तब बाप से कैसे रहा जा सकता है! समधी के निकट इस मामले की दरख़्वास्त पेश करने के पहले गोवर्द्धन ने अपमान, हीनता, और हानि स्वीकार करके अठारह सौ रुपये जमा कर लिये। किस तरह जमा किये, इसका इतिहास न कहना ही अच्छा होगा।

सौ सौ रुपये के अठारह नोट रूमाल में लपेट कर कोट की जेब में रख लिये। गोवर्द्धन मिश्र अपने समधी के पास जाकर बैठ गये। पहले हँसकर महल्ले का प्रसङ्ग उठाया। राधाकृष्ण के घर एक बड़ी भारी चोरी होगई है। उसका आदि से अन्त तक ब्यौरेवार हाल कहा। हीरालाल और कुन्दनलाल दो भाई हैं। दोनों के स्वभाव की तुलना कर विद्या-बुद्धि और शील के सम्बन्ध में हीरालाल की बड़ाई और कुन्दनलाल की निन्दा की। शहर में प्लेग की बीमारी शुरू हो गई है। उसके दो तीन भयानक केसों का ज़िक्र किया। अन्त को प्रसङ्ग उठाकर कहा—वह तीन हज़ार रुपये आपके अब तक बाक़ी ही पड़े हैं। हर बार आने के पहले उन रुपयों को लेते आने का विचार करता हूँ, लेकिन आते समय भूल जाता हूँ। बूढ़ा हो गया हूँ न!

इस तरह एक लम्बी भूमिका करके अपने हृदय-पञ्जर की

हड्डियों की तरह वे नोट बहुत ही सहज में अवहेला के साथ गोवर्द्धन ने कोट की जेब से निकाले। केवल अठारह सौ के नोट देखकर वाजपेयीजी ज़ोर से हँस पड़े। बोले—मिश्रजी, रहने दीजिए। उनकी मुझे कुछ ज़रूरत नहीं। मैं पीप में हाथ भरना नहीं चाहता।

इसके बाद गोवर्द्धन से कुछ न कहा गया। वाजपेयीजी भी चुप रहे। नोट जैसे के तैसे रक्खे रहे। मर्माहत गोवर्द्धन चुपचाप बैठे रहे। बहुत देर के बाद उन्होंने धीरे से लड़की के बिदा कराने की बात उठाई। किसी कारण का उल्लेख न करके, दूसरी ओर देखते देखते, "सो तो अभी हो नहीं सकता" कह कर वकील साहब गाड़ी पर सवार हो गये।

गोवर्द्धन ने लड़की को मुँह नहीं दिखाया। काँपते हुए हाथों से उन नोटों को जेब में रखकर वह घर लौट गये। उन्होंने अपने मन में प्रतिज्ञा की कि जब तक सब रुपये अदा करके बिना किसी संकोच के कन्या के ऊपर दावा न कर सकूँगा तब तक समधियाने न जाऊँगा।

बहुत दिन बीत गये। दुलारी आदमी के ऊपर आदमी भेजती है लेकिन बाप के दर्शन नहीं होते। अन्त को रूठ कर उसने आदमी भेजना बन्द कर दिया। तब गोवर्द्धन के कलेजे पर कड़ी चोट लगी। लेकिन फिर भी नहीं गये।

असाढ़ का महीना आ गया। गोवर्द्धन ने मन में कहा,

अब की गुड़ियों पर दुलारी को ज़रूर बिदा करा लाऊँगा। यह कह कर उन्होंने क़सम खा ली।

असाढ़ सुदी पञ्चमी के दिन तीन हज़ार के नोट बाँध कर गोवर्द्धन फिर समधियाने को चले।

पाँच बरस के पोते ने आकर कहा—"बाबा, मेरे लिए गाड़ी लेने जाते हो?" बहुत दिनों से वह "ठेला गाड़ी" लेने के लिए कह रहा है, लेकिन गाड़ी ख़रीदने का मौक़ा नहीं लगता। छः बरस की पोती ने रोते हुए आकर कहा—बाबा, मुझे लहरियेदार रेशमी धोती ला दो।

गोवर्द्धन अपने घर के इन अभावों को जानते थे और उस समय तमाखू चूना मलते मलते इन्हीं बातों की चिन्ता कर रहे थे। महल्ले में एक परोसी की लड़की का ब्याह है, वहाँ उनकी बहुओं को मामूली कपड़े और गहने पहन कर जाना पड़ेगा; यह सोच कर उन्होंने एक लम्बी साँस भी ली थी। लेकिन उससे उनके मस्तक के शिथिल चमड़े में और भी गहरी विषाद की रेखा अङ्कित होने के सिवा और कुछ भी फल नहीं हुआ।

परिवार के करुण क्रन्दन पर कान न देकर गोवर्द्धन समधी के पास गये। घर में घुस कर नौकरों से सुना कि वाजपेयीजी घर में नहीं हैं। आज गोवर्द्धन बिल्कुल निःसंकोच थे—आज वह उस घर के नौकरों को लज्जित दीन दृष्टि से नहीं देखते थे। जैसे वह अपने ही घर में आये हैं। मालूम हुआ, वाजपेयी की मुलाक़ात के लिए ठहरना पड़ेगा।

आज गोवर्द्धन को बेहद ख़ुशी थी। उनसे न रहा गया। उन्होंने कन्या को उसी बैठक के पिछवाड़े के कमरे में बुलाकर उससे भेंट की। दोनों आँखों से आँसू बह चले। बाप भी रोता था और बेटी भी रोती थी। किसी में बात करने की शक्ति नहीं रही। कुछ देर ऐसा ही हाल रहा। उसके बाद गोवर्द्धन ने कहा—अब बेटी, तुम्हें साथही लिये चलता हूँ।

इसी समय गोवर्द्धन का बड़ा लड़का अपने दोनों बच्चों को लिये सहसा उस कमरे में देख पड़ा। पिता को देखते ही उसने दीन स्वर में कहा—तो क्या दादा अब हम लोगों के रहने का ठिकाना भी न रहेगा?

गोवर्द्धन वहाँ अपने लड़के को देख कर आग बबूला हो गये। उन्होंने कड़े स्वर में कहा—तुम्हारे लिए क्या मैं नरक में अपने को घसीटूँ? तुम क्या मुझे अपनी प्रतिज्ञा न पूरी करने दोगे?

गोवर्द्धन घर बेच आये थे। लड़कों से इस घटना को छिपाने की व्यवस्था करने पर भी बड़े लड़के को ख़बर मिल ही गई। इससे वृद्ध पिता पुत्र के ऊपर क्रुद्ध गया।

पोते ने उनके दोनों घुटने पकड़ कर कहा—बाबा, गाड़ी नहीं लाये?

सिर झुकाये हुए बाबा से कुछ उत्तर न पाकर वह बच्चा पटनारी के पास गया और बोला—बुआ, मुझको एक गाड़ी [illegible]ीद दोगी?

दुलारी को सब हाल मालूम होगया। उसने कहा—दादा, जो आप एक पैसा भी मेरे ससुर को देंगे तो मैं आप का माथा छूकर कहती हूँ कि अपनी जान दे दूँगी।

गोवर्द्धन ने कहा—छी बेटी, यह न कहो। इसके सिवा अगर यह रुपया मैं न दूँगा तो तुम्हारे बाप का अपमान और साथ ही तुम्हारा भी अपमान होगा।

दुलारी ने दृढ़ता के साथ कहा—अगर आप रुपया देंगे तभी अपमान होगा! आपकी लड़की की क्या कुछ इज़्ज़त ही नहीं है? मैं क्या केवल एक रुपये की थैली हूँ? नहीं दादा, ये रुपये देकर आप मेरा अपमान न कीजिए। इसके अलावा जिनका उन रुपयों पर अधिकार है वे भी तो लेना नहीं चाहते।

गोवर्द्धन ने कहा—तो फिर ये लोग तुमको जाने न देंगे बेटी।

दुलारी ने कहा—न जाने देंगे तो क्या किया जायगा। अब आप मुझे बुलाने की कोशिश न कीजिएगा।

गोवर्द्धन ने काँपते हुए हाथ से वे नोट उठाकर जेब में रख लिये और चोर की तरह सबकी नज़र बचाकर घर चले आये।

लेकिन यह बात छिपी नहीं रही कि समधी रुपये लेकर देने आया था और लड़की के रोकने से रुपये लौट गये। एक दासी कौतूहलवश दरवाजे पर कान लगाये सब सुन रही थी। उसने जाकर मालकिन को यह ख़बर सुना दी। सुनकर क्रोध से सास का मुँह लाल हो आया।

दुलारी के लिए उसकी सुसराल शर-शय्या हो उठी। इधर उसका पति ब्याह के कुछ दिन बाद तहसीलदार होकर दूसरे शहर चला गया है। हीन-संसर्ग से स्वभाव बिगड़ जायगा, यह कह कर दुलारी के मैके के किसी भी आदमी से उसका मिलना-बोलना बिल्कुल बन्द कर दिया गया है।

इसी बीच में दुलारी बहुत बीमार पड़ गई। किन्तु इसके लिए सारा दोष उसकी सास के सिर पर नहीं मढ़ा जा सकता। वह अपने शरीर की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देती थी। प्रायः ज़मीन ही में पड़ी सोया करती थी। ठण्ड से बचने के लिए शायद ही कभी कपड़े ओढ़ती हो। खाने-पीने का कुछ नियम न था। वकील साहब की मौसी की विधवा लड़की उन्हीं के यहाँ रहती थी। रोटी करना और सबको खिलाना उसी का काम था। वह भी कभी कभी खाने के लिए बुलाने को भूल जाती और अक्सर उस दिन बहू भूखी ही रह जाती थी। उसके मन में यह धारणा नित्य पक्की होती जाती थी कि इस पराये घर में उसका रहना नौकर-चाकरों और मालिक-मालकिनों के अनुग्रह पर निर्भर है लेकिन बहू का यह ढंग भी सास को असह्य था। अगर खाने के प्रति बहू की कुछ उदासी वह देख पाती थीं तो कहती थीं—"नवाब की बेटी है न! ग़रीबों के घर का खाना उसे नहीं रुचता!" कभी कहती थी—देखो देखो, दिन दिन कैसी दुबली होती जाती है, जैसे खाने को ही नहीं मिलता।

जब रोग बढ़ गया तब सास ने कहा—"बीमार तो कम है, लेकिन बनती बहुत है।" अन्त को एक दिन दुलारी ने विनय के साथ सास से कहा—"अम्मा, दादा और भाइयों को देखने के लिए बहुत जी चाहता है!" सास ने कहा—सब बाप के घर जाने का ढोंग है।

जिस दिन शाम को दुलारी की उलटी साँस चलने लगी उसी दिन पहले पहल डाक्टर देखने आया और फिर दुबारा उसके आने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी।

वकील साहब की बड़ी बहू (दुलारी) मर गई। खूब धूम धाम से उसका "क्रिया-कर्म" किया गया। चन्दन की चिता पर उसकी लाश जलाई गई। शायद वकील साहब ने लड़के के ब्याह में भी इतनी धूम धाम नहीं की थी! बहू की तेरही भी बड़े समारोह से की गई।

गोवर्द्धन को सान्त्वना देने के समय सब ने इस बात का विस्तार से बखान किया कि उनकी लड़की का क्रिया-कर्म बहुत रुपये लगा कर धूमधाम से किया गया है! इसके अलावा किसी स्त्री का पति के आगे मर जाना तो उसके लिए परम सौभाग्य की बात है!

इधर तहसीलदार (दुलारी के पति) की चिट्ठी आई। उसमें लिखा था—"यहाँ मैंने सब बन्दोबस्त कर लिया है। मेरी स्त्री को बहुत शीघ्र यहाँ भेजो।" वकील साहब की स्त्री ने लिखवा भेजा—बेटा, बहू का पीछा हो गया है। तुम्हारा

और ब्याह करना है। कई सम्बन्ध इसी बीच में आगये हैं। छुट्टी लेकर घर चले आओ।

अब की दहेज में पाँच हज़ार का जेवर और इतने ही रुपये नक़द हाथों हाथ वसूल हो गये।



दालिया ।

[हारे हुए शाह सुजा औरङ्गज़ेब के डर से भाग कर आराकान के राजा के अतिथि हुए । उनके साथ उनकी तीनों सुन्दर लड़कियाँ थीं । आराकान के राजा की इच्छा हुई कि शाह सुजा अपनी लड़कियाँ उनके राजकुमारों को ब्याह दें । यह प्रस्ताव उपस्थित होने पर शाह सुजा बहुत नाराज़ हुए । एक दिन राजा की गुप्त आज्ञा से, नाव पर बिठला कर नदी के बीच में ले जाकर शाह सुजा को सपरिवार डुबा देने की निन्दनीय चेष्टा की गई । उस विपत्ति के समय छोटी लड़की अमीना को पिता ने ख़ुद नदी की गोद में विसर्जन कर दिया । बड़ी लड़की आत्महत्या करके मर गई । सुजा का एक विश्वस्त कर्म्मचारी रहमत अली मँझली शाहज़ादी जुलेखा को लेकर पैरता हुआ भाग निकला । सुजा लड़ते लड़ते वहीं मर गये ।

अमीना प्रवल प्रवाह के वेग में पड़ कर बही और भगवत्कृपा से एक बुड्ढे मछुए के जाल में पड़कर निकल आई । उसी मछुए के यहाँ वह पली और बढ़ी ।

इसी बीच में आराकान का बुड्ढा राजा मर गया । अब बड़े राजकुमार गद्दी पर बैठे हैं ।]

---

(१)

एक दिन सबेरे बुड्ढे मछुए ने आकर मीठी झिड़की के स्वर में कहा—"तिन्नी !" मछुए ने आराकानी भाषा में अमीना का नया नाम रक्खा है—तिन्नी। मछुए ने कहा—तिन्नी, आज सबेरे सबेरे तुझे हो क्या गया है! काम काज में बिल्कुल हाथ ही नहीं लगाया! मेरा नया जाल कहाँ है? मेरी वह लग्गी उठा कर डोंगी पर नहीं रक्खी।—

अमीना ने मछुए के पास आकर आदर करके कहा—बुड्ढे, आज मेरी बहन आई हैं, इसीसे कामकाज की छुट्टी है।

बुड्ढे ने आश्चर्य के स्वर में कहा—तेरी कौन बहन तिन्नी!

जुलेख़ा न-जानें कहाँ से निकल आई, और बोली—मैं हूँ।

बुड्ढा सन्नाटे में आगया। इसके बाद जुलेख़ा के बहुत पास जाकर उसने अच्छी तरह उसका चेहरा देखा।

फिर सबसे पहले यही प्रश्न किया—तू कुछ काम काज भी जानती है?

अमीना ने कहा—बुड्ढे, बहन की तरफ़ से मैं काम करूँगी। वह कुछ काम नहीं कर सकतीं।

बुड्ढे ने ज़रा देर सोच कर जुलेख़ा से कहा—तू रहेगी कहाँ?

जुलेख़ा बोली—अमीना के पास।

बुड्ढे ने सोचा, यह तो बड़ी आफ़त हुई! उसने जुलेखा से पूछा—खायगी क्या ?

"इसकी कुछ चिन्ता नहीं है" कह कर जुलेखा ने लापर्वाही के साथ एक अशर्फ़ी मछुए के सामने फेक दी। अमीना ने वह अशर्फी उठाकर मछुए के हाथ में दी और चुपके चुपके कहा—बुड्ढे, अब और कुछ न कहना। काम पर जा, देर हो गई है।

जुलेखा कपट-वेश से अनेक स्थानों में घूमते घूमते अन्त में अमीना का पता पाकर किस तरह मछुए के झोंपड़े में पहुँची, इसका इतिहास लिखने से दूसरी एक कहानी हो जायगी। उसके रक्षक शेख़ रहमत ने अपना नाम बदलकर आराकान की राजसभा में नौकरी कर ली है।

(२)

छोटी सी नदी बह रही थी और शुरू गर्मी के प्रातःकाल की ठण्डी हवा लगने से कैलू नामक पेड़ के लाल रङ्ग के फूलों की पँखड़ियाँ झड़ झड़कर गिर रही थीं।

उसी पेड़ के नीचे बैठी हुई जुलेखा ने अमीना से कहा—अब्बा जान की मौत का बदला चुकाने के लिए ही ख़ुदा ने हम दोनों बहनों को मौत के मुँह से बचाया है। इसके सिवा मुझे तो और कोई सबब नहीं जान पड़ता।

अमीना ने नदी के दूसरे किनारे पर सबसे दूर पर के

अस्पष्ट छाया ऐसे जङ्गल की ओर देखते देखते धीरे से कहा—बहन, अब इन बातों को न उठाओ। मुझे यह दुनिया एक तरह से प्यारी होगई है। मरना चाहें तो मर्द लोग ख़ून ख़राबा करके मरें। मुझे इस धरती पर कोई दुख नहीं है।

जुलेख़ा ने कहा—छी छी अमीना, तू शाहज़ादी है! ज़रा सोच तो सही, कहाँ दिल्ली का तख़्त और कहाँ आराकान के मछुए की झोपड़ी!

अमीना ने हँस कर कहा—बहन, बुड्ढे की यह झोपड़ी और कैलू के पेड़ों की यह छाँह अगर किसी लड़की को दिल्ली के तख़्त से अच्छी जान पड़े तो दिल्ली का तख़्त एक भी आँसू नहीं गिरावेगा।

जुलेख़ा ने कुछ अन्यमनस्क भाव से कहा—तेरा कुछ क़सूर नहीं है। तू उस वक़्त बिल्कुल बच्ची थी। लेकिन ज़रा सोचकर देख तो सही। अब्बा जान तुझे ही सबसे बढ़कर चाहते थे। इसी से अपने हाथों तुझे दरिया में डाल दिया था। इस ज़िन्दगी को उस बाप की दी हुई मौत से बढ़कर मत समझ। अगर तू बाप का बदला चुका सके तो तेरा यहाँ रहना और जीना ठीक है; नहीं तो मर जाना ही बेहतर है।

अमीना चुपचाप दूसरी ओर देखती रही। किन्तु जुलेख़ा को यह अच्छी तरह मालूम होगया कि इन बातों पर उसने विशेष ध्यान नहीं दिया। उसका मन अपनी नई जवानी और किसी सुख-स्मृति में मग्न हो रहा है। बाहर की इस हवा

और रङ्गीन पेड़ की छाँह ने जीवन की बहुत सी आशाओं और अभिलाषाओं को उत्पन्न कर दिया है।

कुछ देर बाद एक लंबी साँस लेकर अमीना ने कहा—बहन, मैं ज़रा घर का काम काज करने जाती हूँ। मैं न पकाऊँगी तो बुड्ढा भूखा ही रह जायगा।

(३)

अमीना की हालत देख कर जुलेख़ा बहुत उदास हुई। वह बैठे बैठे उसकी हालत पर गौर करने लगी। इसी समय एकाएक किसी के कूदने का शब्द हुआ, साथ ही पीछे से किसी ने आकर जुलेख़ा की दोनों आँखें मूँद लीं।

जुलेख़ा ने डर कर कहा—कौन है?

आवाज़ सुनकर जुलेख़ा की आँखों पर से हाथ हटा कर वह युवक उसके सामने आया। वैसे ही निर्भय भाव से बिना किसी सङ्कोच के उस युवक ने जुलेख़ा से कहा—"तुम तो तिन्नो नहीं हो।" मानों जुलेख़ा तिन्नी बन कर बैठी थी, युवक ने अपनी असामान्य बुद्धि के बल से उसकी चालाकी पकड़ ली है।

जुलेख़ा अपने कपड़े संभाल कर ग़रूर के साथ उठकर खड़ी होगई और कड़ी निगाह से उसने युवक की ओर देखा। उसके बाद कहा—तुम कौन हो?

युवक ने कहा—तुम मुझे नहीं पहचानतीं। तिन्नी जानती है। तिन्नी कहाँ है?

इस गोलमाल को सुन कर तिन्नी वहाँ आगई। जुलेख़ा का क्रोध और उस युवक का किंकर्त्तव्यविमूढ़ विस्मित भाव देखकर अमीना ज़ोर से हँस पड़ी।

अमीना ने ज़ुलेख़ा से कहा—बहन, इसकी बातों का तुम बुरा न मानना। यह क्या आदमी है! यह तो एक जङ्गली हिरन है। अगर इसने कुछ बेअदबी की हो तो मैं इसे सज़ा दूँगी। दालिया, तू ने क्या किया?

दालिया (यह उसी युवक का नाम था) तत्क्षण कह उठा—आँखें मूँदी थीं। मैं समझा था कि तिन्नी बैठी है। लेकिन वह तो तिन्नी नहीं है।

तिन्नी ने सहसा बड़ा क्रोध ज़ाहिर करके कहा—"फिर! छोटे मुँह बड़ी बात! तू ने तिन्नी की आँखें कब मूँदी थीं? तेरी तो हिम्मत कम नहीं देख पड़ती!

युवक ने कहा—आँख मूँदने में ज्यादह हिम्मत की कोई ज़रूरत नहीं देख पड़ती; ख़ास कर अगर पहले का अभ्यास हो। लेकिन सच कहता हूँ तिन्नी, आज मैं कुछ डर गया था।

इतना कह कर गुप्त रूप से ज़ुलेख़ा की ओर उँगली उठाकर अमीना की ओर देख कर दालिया चुपचाप हँसने लगा।

अमीना ने कहा—नहीं, तू बड़ा ढीठ और गँवार है! तू शाहज़ादी के सामने खड़े होने लायक़ नहीं। तुझे मैं सोहबत की तालीम दूँगी। देख, इस तरह सलाम कर।

यों कहकर अमीना ने जवानी से भरे अपने नाज़ुक शरीर

को लोच के साथ झुका कर जुलेख़ा को सलाम किया। दालिया ने बड़ी मुशकिल से उसका बिल्कुल ही असम्पूर्ण अनुकरण किया।

इसके बाद अमीना ने कहा—इस तरह तीन पग पीछे हट जा।" दालिया कुछ पीछे हट आया।

अमीना ने कहा—"फिर सलाम कर।" दालिया ने फेर सलाम किया।

इस तरह पीछे हटा कर सलाम कराकर अमीना दालिया को झोपड़ी के द्वार के पास लेगई।

दूसरी झोपड़ी का दरवाज़ा दिखाकर अमीना ने दालिया से कहा—"इसके भीतर चल।" दालिया उसके भीतर चला गया।

अमीना ने बाहर से कुण्डी बन्द कर दी और—"ज़रा घर का काम कर। आग सुलगा रख।" यह कह कर वह अपनी बहन के पास चली गई।

उसने जुलेखा से कहा—बहन, ख़फ़ा न होना। यहाँ के आदमी इसी तरह के हैं। मैं तो इसके ऊधम से ऊब गई हूँ।

लेकिन अमीना के चेहरे पर या बरताव में इस बात की सचाई के लक्षण नहीं देख पड़ते। बल्कि अनेक बातों में यहाँ के आदमियों के प्रति उसका अनुचित पक्षपात देखा जाता है।

जुलेखा ने भर सक गुस्सा ज़ाहिर करके कहा—सचमुच

अमीना, तेरा हाल देखकर मुझे बड़ा तअज्जुब होता है। एक ग़ैर नौजवान की इतनी मजाल कि वह आकर तेरे बदन में हाथ लगावे!

अमीना अपनी बहन के स्वर में स्वर मिला कर बोली—"हाँ बहन! अगर किसी बादशाह या नवाब का लड़का आकर ऐसी हरकत करता तो ज़रूर वह बेइज्जती के साथ दुतकार दिया जाता।

जुलेखा से हँसी रोकी नहीं गई। उसने हँसकर कहा—सच बता अमीना, तुझे क्या इस गँवार छोकरे के लिए ही यह दुनिया इतनी प्यारी लगती है?

अमीना ने कहा—"बहन, सच तो यह है कि यह आदमी मेरे बड़े काम आता है। फूल और फल तोड़ लाता है, शिकार कर लाता है, कुछ काम करने के लिए पुकारो तो दौड़ा आता है। मैं अक्सर इरादा करती हूँ कि उसे उसकी ढिठाई के लिए सज़ा दूँ। लेकिन वैसा मेरे किये नहीं होता। अगर ख़ूब आँखें लाल कर कहती हूँ कि दालिया, मैं तुझसे बहुत नाखुश हूँ तो वह चुपचाप मेरे मुँह की ओर देख कर हँसने लगता है। इस मुल्क में शायद योंही हँसी-दिल्लगी की जाती है। मैंने यह भी इम्तिहान करके देख लिया है कि दो घूसे मार दो तो वह निहाल हो जाता है। यह देखो न, उस झोपड़े में बन्द कर रक्खा है—इससे वह बहुत ख़ुश होगा। दरवाज़ा खोलकर देखलो, वह ख़ुशी के साथ आग सुलगा

रहा होगा । मैं क्या करूँ बहन ! इस पर तो मेरा कुछ बस नहीं चलता ।

जुलेखा ने कहा—अच्छा मैं कोशिश करके देखूँगी ।

अमीना ने हँसकर विनय के स्वर में कहा—बहन, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ ! उसको अब कुछ न कहना ।

अमीना ने यह बात इस ढंग से कही जैसे वह जवान अमीना का पालतू मृग है, अभी तक उसका जंगलीपन दूर नहीं हुआ—यह खटका लगा हुआ है कि अन्य किसी आदमी को देख कर डर के मारे वह कहीं लापता न हो जाय ।

इसी समय मछुए ने आकर कहा—आज दालिया नहीं आया तिन्नी ?

अमीना ने कहा—आया है ।

मछुआ—कहाँ गया ?

अमीना—वह बड़ा ऊधम कर रहा था, इसीसे उसे उस घर में बन्द कर रक्खा है ।

बुड्ढे ने कुछ सोच कर कहा—अगर वह कुछ खिझाता हो तो तू नाराज़ न होना । थोड़ी उमर में सभी ऐसे ऊधमी हुआ करते हैं । बहुत डाँटना डपटना नहीं । दालिया ने कल एक थालू (आराकान की अशर्फी) देकर मुझसे तीन मछलियाँ मोल ली थीं ।

अमीना ने कहा—कुछ सोच न कर बुड्ढे, मैं आज उससे दो थालू वसूल कर लूँगी और उसे एक मछली भी न देनी पड़ेगी ।

अपनी पाली हुई लड़की को इतनी थोड़ी उमर में ऐसी चालाक और होशियार देख कर बुड्ढा बहुत खुश हुआ और स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेर कर चला गया ।

(४)

आश्चर्य की बात तो यह है कि कुछ दिन में दालिया के आने-जाने के बारे में जुलेखा का भाव बदल गया। लेकिन सोच कर देखा जाय तो इसमें कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। नदी में जैसे एक ओर प्रवाह और दूसरी ओर किनारा होता है वैसे ही स्त्री के हृदय में एक ओर आवेग (जोश) और दूसरी ओर लोकलज्जा होती है। लेकिन सभ्य-समाज के बाहर आराकान के इस प्रान्त में लोकसमाज ही कहाँ है!

यहाँ केवल हर एक ऋतु में पेड़ फूलते हैं; सामने की नीली नदी बरसात में बढ़ कर, शरद ऋतु में स्वच्छ रह कर और गर्मियों में क्षीण होकर अपूर्व शोभा दिखलाती है; यहाँ चिड़ियों के उल्लासपूर्ण कण्ठस्वर में किसी के चरित्र की समालोचना नहीं है; दक्षिण पवन दूसरे किनारे के गाँव से मनुष्यों के शब्द को इस पार लेआता है, लेकिन कोई कानाफुसकी करनेवाला नहीं है।

गिरे हुए घर के ऊपर क्रमशः जैसे घास-फूस का जङ्गल हो आता है वैसे ही यहाँ कुछ दिन रहने से 'प्रकृति' के गुप्त आक्रमण से लौकिकता की मनुष्य-निर्मित दृढ़ दीवार अलक्षित

भाव से गिर जाती है और चारों ओर प्राकृतिक जगत् के साथ सब एकाकार हो उठता है। इसके सिवा, परस्पर एक दूसरे के योग्य नर-नारी की जोड़ी का मिलन-दृश्य देखना स्त्रीजाति को जैसा अच्छा मालूम होता है वैसा और कुछ नहीं। स्त्री-जाति के लिए इतने रहस्य, इतने सुख और इतने कौतूहल की बात और कोई होही नहीं सकती। यही कारण है कि मछुए की झोपड़ी में, निर्जन ग़रीबी की छाया में, जब जुलेख़ा का कुल-गर्व और लोकमर्यादा का भाव आप ही शिथिल हो आया तब फूले हुए कैलू के पेड़ों की छाँह में अमीना और दालिया के मिलन का मनोहर खेल देख कर उसे बड़ा आनन्द मालूम पड़ने लगा।

जान पड़ता है, उसके भी तरुण हृदय में एक अतृप्त आकांक्षा जग उठती थी और वह उसे सुख और दुख की लहरों से चञ्चल कर देती थी। अन्त को ऐसा हुआ कि किसी दिन दालिया के आने में देर होती थी तो अमीना जैसे उत्कण्ठित हो उठती थी वैसे ही जुलेख़ा भी आग्रह के साथ उसकी राह देखती थी। दोनों जब एकत्र हो जाते तब जुलेख़ा हँसती हुई उन्हें स्नेह की उस दृष्टि से देखती थी जिससे कि चित्रकार अपनी तुरन्त समाप्त की हुई तसवीर को कुछ दूर से देखता है। कभी कभी लड़ती-झगड़ती भी थी, झूठमूठ डाटती थी और कभी अमीना को घर के भीतर बन्द करके उसे खिझाने के लिए युवक से मिलने में बाधा भी पहुँचाती थी।

सम्राट् और जङ्गली आदमियों में एक तरह की समता पाई जाती है। दोनों ही स्वाधीन और स्वराज्य के एकाधिपति होते हैं। दोनों किसी के नियम को नहीं मानते। दोनों ही में प्रकृति का स्वाभाविक महत्व और सरलता देखी जाती है। जो लोग बीच के दर्जे के आदमी हैं, जो लोग दिन-रात शास्त्र के अक्षरों को गिन गिन कर चलते हैं उन्हीं में दूसरा ढंग देख पड़ता है। वही बड़ों के निकट दास, छोटों के निकट मालिक और कुजगह पर बिल्कुल ही किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर रह जाते हैं। गँवार दालिया प्रकृति का ढीठ लड़का था। शाहज़ादियों के निकट उसे कुछ संकोच न था। शाहज़ादियाँ भी उसे अपने बराबर का आदमी समझती थीं। वह हँसमुख, सरल, कौतुक-प्रिय, सभी अवस्थाओं में निर्भय और निःसंकोच था। उसके चरित्र में ग़रीबी का कोई भी लक्षण नहीं देख पड़ता था।

किन्तु इस खेल-कूद में फँस जाने पर भी कभी कभी ज़ुलेखा का हृदय हाहाकार कर उठता था। वह सोचती थी कि शाहज़ादी की ज़िन्दगी क्या यों ही गुज़रनी चाहिए!

एक दिन सबेरे दालिया के आते ही ज़ुलेखा ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—दालिया, तुम यहाँ के राजा को दिखला दे सकते हो?

दालिया—जी हाँ। क्यों, क्या काम है?

ज़ुलेखा—मेरे पास एक छुरा है। वह छुरा मैं उसकी छाती में भोंक देना चाहती हूँ।

पहले दालिया को कुछ विस्मय हुआ । उसके बाद जुलेखा के हिंसा के भयानक भाव से भरे चेहरे की ओर देखकर वह हँसने लगा । जैसे ऐसी मजे की बात उसने पहले कभी नहीं सुनी थी ! अगर दिल्लगी भी है तो शाहज़ादी के लायक़ ही है । कोई बात न चीत, जाते ही एक जीते हुए राजा के पेट में आधा छुरा घुसेड़ देने पर इस "अपनपौ" के व्यवहार से राजा कैसे अचम्भे में आ जायँगे ।—यही ख़याल उसके हृदय में उठने लगा—यही चित्र उसकी आँखों के आगे अंकित होगया । वह रह रह कर उच्च हास्य करने लगा ।

(५)

उसके दूसरे ही दिन रहमतअली ने गुप्त रूप से जुलेखा को पत्र लिखा कि आराकान के राजा को यह ख़बर लग गई है कि दोनों शाहज़ादियाँ मछुए के यहाँ हैं । वह छिप कर अमीना को देख आये हैं और उस पर आशिक़ हो गये हैं । उसे ब्याह के लिए जल्द ही महल में लाने की तैयारी हो रही है । बदला चुकाने का इससे अच्छा मौक़ा नहीं मिल सकता ।

जुलेखा ने मज़बूती से अमीना का हाथ पकड़ कर कहा—ख़ुदा की मर्ज़ी साफ़ देख पड़ती है । अमीना, अपनी ज़िन्दगी का फ़र्ज अदा करने का यही मौक़ा है । अब यह खेल-कूद में फँसे रहना अच्छा नहीं मालूम पड़ता ।

दालिया वहीं मौजूद था। अमीना ने उसकी तरफ़ देखा। वह कौतुक की हँसी हँस रहा था।

अमीना ने उसका हँसना देख मर्माहत होकर कहा—जानते हो दालिया, मैं रानी बनने जाती हूँ।

दालिया ने कहा—सो तो बहुत देर के लिए नहीं।

अमीना ने पीड़ित और विस्मित होकर अपने मन में कहा—सचमुच ही यह जङ्गली हिरन है। इसके साथ इन्सान का ऐसा बर्ताव करना मेरा पागलपन है।

अमीना ने दालिया को और भी ज़रा सचेत करने के लिए कहा—राजा को मार कर मैं क्या फिर वहाँ से जीती लौट आऊँगी?

दालिया ने अमीना की बात को ठीक समझ कर कहा—हाँ, लौटना तो कठिन ही है।

अमीना का अन्तःकरण एक दम मुरझा गया।

जुलेखा की ओर फिर कर साँस लेकर अमीना ने कहा—बहन, मैं तैयार हूँ।

दालिया की ओर फिर कर घायल हृदय से दिल्लगी का भान करके अमीना ने कहा—रानी होते ही पहले मैं राजा के ख़िलाफ़ काररवाई में शामिल होने के क़सूर पर तुमको सज़ा दूँगी। उसके बाद और काम करूँगी।

सुनकर दालिया को विशेष कौतुक मालूम पड़ा। जैसे ऐसा होने से एक बड़े मज़े की दिल्लगी होगी।

(६)

सवार, पैदल, झण्डा, हाथी, बाजे और रोशनी से मछुए का घर भर गया। राजा के महल में दोनों शाहज़ादियों को ले जाने के लिए दो पालकियाँ आईं।

अमीना ने जुलेखा के हाथ से कटार ली। उसकी हाथी-दाँत की मूठ पर बनी हुई कारीगरी को कई मिनट तक वह देखती रही। इस के बाद कपड़ा हटा कर अपनी छाती पर एक बार उसकी धार परखी। जीवन-मुकुल के पास एक बार कटार लगा कर, फिर म्यान में रखकर, उसे गुप्त रूपसे कुर्ती में रख लिया।

अमीना की बड़ी इच्छा थी कि इस मरण-यात्रा के पहले एक बार दालिया से मुलाक़ात हो; लेकिन वह कल से लापता है। तो क्या दालिया की उस हँसी में रूठना छिपा हुआ था?

पालकी पर चढ़ने के पहले अमीना ने आँसू भरी आँखों से अपने उस लड़कपन के आश्रय झोपड़े को देखा। अपने झोपड़े के आसपास के वृक्षों को और नदी को देखा। मछुए का हाथ पकड़ कर अमीना ने गद्गद स्वर में कहा—तो फिर बुड्ढे मैं जाती हूँ। तिन्नी तो जाती है, अब तेरे घर का काम-काज कौन करेगा?

मछुआ बालक की तरह रो उठा।

अमीना ने कहा—बुड्ढे अगर दालिया यहाँ आवे तो उसे यह अँगूठी देना। कहना, तिन्नी जाते वक्त दे गई है।

यह कह कर अमीना अँगूठी देकर पालकी पर जल्दी से सवार हो गई। बड़े समारोह से शाहज़ादियों की दोनों पालकियाँ राजमहल की तरफ़ चलीं। अमीना के रहने का झोपड़ा, नदी-तट और कैलू-वृक्षों का वन अन्धकार और सन्नाटे से भयानक तथा जन-शून्य हो उठा।

यथासमय दोनों पालकियाँ फाटक होकर अन्तःपुर की ड्यौढ़ी पर पहुँची। दोनों बहनें पालकियों से उतर पड़ीं।

अमीना के मुख में हँसी या आँखों में आँसू न थे। ज़ुलेखा का चेहरा फ़क़ हो रहा था।

कर्तव्य जब तक दूर था तब तक उसे तीव्र उत्साह था। इस समय उसका हृदय धड़क रहा था। स्नेह से व्याकुल ज़ुलेखा ने बहन को कस कर छाती से लगा लिया। अपने मन में ज़ुलेखा ने कहा—अफ़सोस, नई मोहब्बत के गुच्छे से तोड़ कर मैं इस खिलरहे फूल को किस ख़ून की नदी में बहाये देती हूँ!

लेकिन अब कुछ सोचने-विचारने का समय नहीं है। हज़ारों दीपकों से प्रकाशित मार्ग दिखा कर दासियाँ आगे आगे चलीं और उनके पीछे दोनों बहनें आगे बढ़ीं।

राजा के रङ्गमहल के द्वार पर पहुँच कर अमीना ने ज़ुलेखा से कहा—बहन!

जुलेखा ने अमीना को गले से लगा कर उसका मुँह चूमा।

दोनों ने धीरे धीरे रङ्गमहल में प्रवेश किया।

राजवेश से कमरे के भीतर एक बहुमूल्य पलँग के ऊपर राजा बैठे हुए थे। अमीना सङ्कोच के साथ दरवाज़े से थोड़ी दूर पर ठिठक रही।

जुलेखा ने आगे बढ़ कर राजा के पास पहुँच कर देखा, वह चुपचाप कौतुक की हँसी हँस रहे हैं।

जुलेखा कह उठी—"दालिया!" अमीना बेहोश हो गई।

घायल पक्षी की तरह गिर पड़ी अमीना को गोद में उठा कर दालिया (राजा) पलँग पर ले गया। अमीना ने होश आने पर कुर्ती से कटार निकाल कर बहन की ओर देखा, बहन ने दालिया की ओर देखा, दालिया चुपचाप हँसते हँसते दोनों की ओर देखने लगा, और कटार भी म्यान से ज़रा मुँह निकाल कर यह तमाशा देख कर झिल मिल करती हुई हँसने लगी।

मुर्दे का ढाँचा।

हम तीन लड़कपन के साथी जिस कमरे में सोते थे उस के पास ही की कोठरी में एक समूचा मुर्दे का ढाँचा रक्खा रहता था। रात को खिड़की की हवा लगने से उसकी हड्डियों की खटखटाहट सुनाई पड़ती थी। हम लोग उस समय पण्डित-जी से माघ काव्य और कैम्बेल-स्कूल के एक छात्र से अस्थि-विद्या पढ़ते थे। हमारे अभिभावकों की इच्छा थी कि हम लोग सहसा सब विद्याओं में पारदर्शी बन जायँ। उन लोगों की इच्छा कहाँ तक सफल हुई है, यह बात उन लोगों को बतलाने की कोई ज़रूरत नहीं जो कि हमको जानते हैं और जो लोग हमको नहीं जानते उनके आगे उसका न प्रकाशित होना ही अच्छा है।

तब से बहुत सा समय बीत गया है। खोजने से भी इस बात का पता लगना कठिन है कि उस मकान से वह मुर्दे का ढाँचा और हमारे मस्तक से अस्थिविद्या कहाँ चली गई।

थोड़े दिन हुए, एक बार रात को किसी कारण से और जगह स्थान न मिलने के कारण मुझे उसी कमरे में सोना पड़ा। अभ्यास न रहने के कारण उस कमरे में नींद नहीं आती थी। इधर उधर करवट बदलते बदलते गिरजे की घड़ी के सब बड़े बड़े घंटे (९, १०, ११, १२ तक) बज गये। कमरे के कोने

में जो चिराग़ जल रहा था वह पाँच मिनट तक झिलमिला कर इसी समय एकदम बुझ गया। इसके पहले ही हमारे घर मैं दो-एक मृत्यु की दुर्घटनायें हो चुकी हैं। इसी से इस दीपक के बुझने को देख कर सहज ही मृत्यु का स्मरण हो आया। जान पड़ा, आधी रात को जैसे यह चिराग़ बुझ गया ऐसे ही कभी दिन में और कभी रात में मनुष्य-दीपक बुझ जाते हैं! प्रकृति के निकट दोनों घटनायें एक सी हैं।

क्रमशः उस ढाँचे की याद आई। उस मृतक के जीवन-काल की कल्पना करते करते सहसा जान पड़ा कि कोई चेतन पदार्थ अँधेरे में कमरे की दीवार को टटोलता हुआ मेरी मसहरी के चारों ओर घूम रहा है। उसकी चल रही तेज साँस का शब्द भी मुझे सुन पड़ा। वह जैसे कुछ खोज रहा है, लेकिन उसे पाता नहीं। वह बड़ी तेज़ी से घर भर की जैसे प्रदक्षिणा कर रहा है। मैंने सोचा कि यह सब मेरे निद्राहीन गर्म दिमाग़ की कल्पनामात्र है। मुझे यह भी मालूम पड़ा कि मेरे ही मस्तक में जो खून चक्कर मार रहा है वही किसी के ज़ोर से चारों ओर घूमने का भ्रम पैदा कर रहा है। लेकिन तब भी रोएँ खड़े हो आये। इस अकारण भय को ज़बर्दस्ती दूर करने के लिए मैं कह उठा—"कौन है?" पैरों की आहट मेरी मसहरी के पास आकर रुक गई। मुझे यह उत्तर भी सुन पड़ा—"मेरा वह हड्डियों का ढाँचा कहाँ गया? उसी को खोजने आई हूँ।"

मैंने सोचा, इस अपनी कल्पना की सृष्टि से डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। तकिये को छाती के नीचे रखकर चिरपरिचित की तरह बहुत ही सहज स्वर में मैंने कहा—इस आधी रात को अच्छा काम ढूँढ़ निकाला है। लेकिन उस ढाँचे की अब तुम्हें क्या ज़रूरत है?

अँधेरे में मसहरी के पास से ही उत्तर मिला—कहते क्या हो? मेरे हृदय की हड्डियाँ उसी में थीं। मेरी छब्बीस बरस की जवानी उसी के चारों ओर विकास को प्राप्त हुई थी। ऐसी अपनी चीज़ को देखने की इच्छा होना क्या स्वाभाविक नहीं है?

मैंने कहा—हाँ, बात तो तुम्हारी युक्ति-संगत है। अच्छा तुम जाकर उसका पता लगाओ। मुझे ज़रा सो लेने दो।

उसने कहा—जान पड़ता है, तुम अकेले हो। अच्छा तो ज़रा बैठ जाऊँ। आओ ज़रा बातचीत करें। पैंतीस बरस पहले तक मैं भी आदमी के पास बैठ कर, आदमी के रूप में, बात-चीत करती थी। इधर ये मेरे पैंतीस बरस केवल मसान की हवा में 'हूहू' शब्द करके घूमने में बीते हैं। आज तुम्हारे पास बैठ कर फिर आदमी की तरह बात चीत करने को जी चाहता है।

मुझे जान पड़ा, जैसे मेरी मसहरी के पास कोई बैठ गया। कोई और उपाय न देख मैंने कुछ अधिक उत्साह दिखा कर कहा—अच्छी बात है। ज़रा तबियत ख़ुश करनेवाली कोई बात सुनाओ।

उसने कहा—सब से बढ़ कर मजे की बात मेरा जीवन-चरित्र है। मैं उसी को भरसक संक्षेप में कहती हूँ।

गिरजे की घड़ी में टन टन करके दो बजे।

उसने कहा—जब मैं आदमी के रूप में थी और छोटी थी तब एक आदमी को यमराज की तरह डरती थी। वह थे मेरे स्वामी। काँटे में फँसी हुई मछली की जो दशा होती है वही दशा मेरी थी। अर्थात् मुझे जान पड़ता था कि कोई बिल्कुल अपरिचित आदमी जैसे एक काँटे में फँसाकर मुझे मेरे स्नेहपूर्ण जन्म-भूमि जलाशय से घसीटे लिये जा रहा है—उसके हाथ से किसी तरह छुटकारा नहीं देख पड़ता। व्याह के दो ही महीने बाद मेरे स्वामी की मृत्यु हो गई। मेरे आत्मीय-स्वजनों ने मेरे लिए बहुत विलाप और पश्चात्ताप किया। मेरे ससुर ने बहुत से लक्षण मिला कर देखकर सास से कहा—"शास्त्र में जिसे विष-कन्या कहते हैं, यह लड़की वही है।" यह बात मुझे स्पष्ट रूप से याद है।—सुनते हो? कैसी कहानी है?

मैंने कहा—अच्छी है। कहानी का आरम्भ बड़ा ही मजेदार है।

वह—अच्छा सुनो। मैं खुशी के साथ बाप के घर चली आई। धीरे धीरे अवस्था अधिक होने लगी। लोग मेरे आगे मेरे रूप का बखान नहीं करते थे, लेकिन मैं खुद अच्छी तरह जानती थी कि मेरी ऐसी सुन्दर स्त्री सब जगह नहीं देख पड़ती। तुम क्या समझते हो?

मैं—बहुत सम्भव है कि तुम अत्यन्त सुन्दरी रही हो। लेकिन मैंने तो तुमको कभी देखा नहीं।

वह—"देखा नहीं! क्यों? मेरा वह ढाँचा! ही ही ही ही—मैं ठट्ठा करती हूँ। तुम्हारे आगे मैं कैसे साबित करूँ कि उन चक्षुहीन गढ़ों में पहले दो बड़ी बड़ी काली काली आँखें थीं। इस समय के खुले हुए मांसशून्य दाँतों की विकट हँसी देखकर, तुम क्या, कोई भी यह अनुमान नहीं कर सकता कि वहाँ पर दो लाल ओठ थे और उनके ऊपर मनमोहिनी हँसी लहराया ही करती थी। उस ढाँचे के उन कई एक अस्थि-खण्डों के ऊपर इतना लालित्य, इतना सलोनापन और इतनी जवानी की कठिन-कोमल सुडौल परिपूर्णता दिन दिन खिलती आती थी कि उसका वर्णन तुम्हारे आगे करते हँसी आती है और गुस्सा भी मालूम पड़ता है। उस समय के बड़े बड़े डाकृर भी इस बात पर विश्वास न करते कि मेरे उस शरीर को लेकर अस्थिविद्या सीखी जा सकती है। मुझे मालूम है कि एक डाकृर ने अपने एक खास दोस्त से मुझे स्वर्ण-चम्पा कहा था। उसका अर्थ यही था कि पृथ्वी के और सब मनुष्य अस्थि-विद्या और शरीर-तत्त्व सीखने के सामान बन सकते हैं, केवल मैं ही सौन्दर्यमय फूल के समान थी। कौन कह सकता था कि स्वर्ण-चम्पा के भीतर यह हड्डियों का ढाँचा होगा?

"मैं जब चलती थी तब मुझे आप ही मालूम पड़ता था कि जैसे हीरे को हिलाने डुलाने से उसके चारों ओर प्रकाश की चमक

दौड़ जाती है वैसे ही मेरे शरीर का हर अङ्ग हिलने से सौन्दर्य की छटा चारों ओर छिटक जाती थी। मैं बीच बीच में अपने हाथों को आप ही बहुत देर तक निहारा करती थी। दोनों हाथ ऐसे थे कि पृथ्वी के सारे उद्धत पौरुष के मुँह में लगाम चढ़ा कर उसे अपने वश में रख सकते थे। सुभद्रा अर्जुन को लेकर दर्प के साथ अपने विजय-रथ को विस्मित त्रिलोकी के भीतर से ले गई थीं। जान पड़ता है, उनके भी ऐसी ही गोल सुडौल भुजायें, लाल हथेलियाँ और लावण्य शिखा के समान उँगलियाँ थीं।

"मेरे उस निर्लज्ज, आवरणरहित, आभरणहीन, चिरवृद्ध ढाँचे ने तुमको जो बतलाया है वह बिलकुल ग़लत है। उस समय कोई उपाय न था; मैं उत्तर नहीं दे सकती थी। यही कारण है कि पृथ्वी पर सबसे बढ़कर तुम पर मुझे रोष है। जी चाहता है कि अपने उस सोलह साल के सजीव और जवानी की गर्मी से भरे हुए रूप को ज़रा तुम्हारी आँखों के सामने खड़ा करूँ, सदा के लिए तुम्हारी आँखों की नींद मिटा दूँ और तुम्हारी अस्थि-विद्या को अस्थिर करके इस देश से निकाल बाहर कर दूँ।—"

मैं—तुम्हारे अगर शरीर होता तो मैं उसे छूकर कहता कि मेरे मस्तक में अब उस विद्या का लेश भी नहीं है। और तुम्हारी उस भुवन-मोहिनी जवानी का रूप रात के अन्धकार पट के ऊपर अग्निवर्ण से अङ्कित हो उठा है। तुम्हें अब और अधिक न कहना पड़ेगा।

वह—"घर में मेरा कोई साथी न था । दादा ने व्याह न करने की प्रतिज्ञा कर रक्खी थी । ज़नाने में बस अकेली मैं थी । घर के भीतर के छोटे बाग़ में, पेड़ के नीचे, अकेले बैठकर मैं सोचती थी कि सारी पृथ्वी मुझी को प्यार करती है, सब तारे मुझी को निहार रहे हैं, हवा अङ्ग में लगने के लिए बार बार मेरे पास आती है, और जिस घास के ऊपर दोनों पैर रक्खे मैं बैठी हूँ उसके अगर चेतना होती तो वह फिर दुबारा अचेत हो जाती । मैं अपने मन में यह कल्पना करती थी कि पृथ्वी के सारे नौजवान लोग इस तृण-पुञ्ज के रूप से दल बाँध कर चुपचाप मेरे चरणों के पास खड़े हैं । हृदय में अकारण ही एक प्रकार की व्यथा जान पड़ती थी ।

"दादा के दोस्त डाक्टर रामनाथ मेडिकल कालेज से 'पास' होकर आते ही हमारे घर के डाक्टर होगये । मैंने पहले आड़ से उनको कई बार देखा था । दादा बहुत ही विचित्र आदमी थे—पृथ्वी को जैसे अच्छी तरह आँख खोल कर देखते ही न थे ।

"उनके दोस्तों में बस एक रामनाथ थे । इसीसे बाहर के युवकों में केवल रामनाथ ही मुझे हमेशा देखने को मिलते थे । जब मैं सन्ध्या के समय फूले हुए पेड़ के नीचे रानी बनकर बैठती तब पृथ्वी के सारे पुरुष रामनाथ का रूप रखकर मेरे पैरों के पास आकर सिर झुकाते थे ।—सुनते हो क्या जान पड़ता है ?"

मैंने एक साँस लेकर कहा—जान पड़ता है कि रामनाथ होकर जन्म लेता तो अच्छा था।

उसने कहा—"पहले सब सुन लो।—एक दिन बदली थी, मुझे बुख़ार चढ़ आया। डाक्टर देखने आये। सामने होने का यह पहला ही मौक़ा था।

"मैं खिड़की की तरफ़ मुँह किये हुए थी। उसका मतलब यह था कि सायङ्काल की लाल आभा पड़ने से रोगी-मुख का फीकापन छिप जाय। डाक्टर ने भीतर आते ही जब एक बार मेरे मुँह की ओर देखा तब मैंने मन ही मन अपने को डाक्टर मान कर कल्पना के आईने में अपने मुँह को देख लिया। उस सन्ध्या के प्रकाश में कोमल तकिये के ऊपर कुछ मुरझाये हुए फूल के समान सुन्दर सुकुमार मुख रक्खा हुआ था; छोटे छोटे केश मस्तक पर बिखरे पड़े थे; लज्जा से नीची बड़ी बड़ी आँखों की पलकों की छाया कपोलों के ऊपर फैली

"डाक्टर ने नम्र और कोमल स्वर में दादा से कहा—ज़रा हाथ देखना होगा।

"मैंने कपड़े के भीतर से रोग-शिथिल गोल गोल हाथ बाहर निकाला। एक बार हाथ की ओर देखा, अगर नीले रङ्ग की काच की चूड़ी पहन सकती तो और भी अच्छे मालूम पड़ते। इससे पहले मैंने कभी किसी डाक्टर-वैद्य को इतनी देर तक किसी रोगी की नाड़ी देखते नहीं देखा था। अत्यन्त असं-

लग्न भाव से, काँपती हुई उँगलियों से, उन्होंने नाड़ी देखी। उन्होंने मेरे बुखार की गर्मी समझ ली, और मैंने भी यह जाँच लिया कि उनके हृदय की नाड़ी किस गति से चल रही है।— क्यों, तुमको क्या विश्वास नहीं होता?"

मैंने कहा—मुझे तो इसमें अविश्वास का कुछ भी कारण नहीं देख पड़ता। आदमी की नाड़ी हर हालत में एक गति से नहीं चलती।

उसने कहा—"कुछ दिनों में और भी दो चार बार बीमार और आराम होने के बाद मैंने देखा, मेरे उस सन्ध्याकाल के ख़याली दरबार में पृथ्वी के करोड़ों पुरुषों की संख्या घटते घटते एक ही रह गई। मेरे लेखे पृथ्वी जन-शून्य हो गई। जगत् में केवल एक डाक्टर और एक रोगी बच रहा।

"मैं छिपाकर शाम को एक बसन्ती रङ्ग की धोती पहनती थी, अच्छी तरह चोटी बाँध कर उसमें एक बड़ा गुलाब का फूल खोंस लेती थी। इसके बाद एक आईना हाथ में लेकर उसी छोटी सी बगिया के भीतर जाकर बैठती थी।

"आप कहेंगे, क्यों? अपने को देखकर क्या जी नहीं भरता था? जी हाँ, अपने को देख कर जी नहीं भरता था। इसका कारण था। वह यह कि मैं केवल आप ही अपने को नहीं देखती थी। मैं उस समय अकेले ही दो रूप रख लेती थी। उस समय मैं डाक्टर की ओर से अपने को देखती थी, मुग्ध होती थी, प्यार करती थी और आदर दिखाती थी। लेकिन हृदय के

भीतर शाम की हवा की तरह एक लम्बी साँस चक्कर लगाने लगती थी।

"तब से मैं अकेली नहीं रही। जब चलती थी तब झुकी हुई आँखों से देखती थी कि मेरे पैर की उँगलियाँ ज़मीन के ऊपर किस तरह पड़ती हैं। साथ ही सोचती थी कि यह मेरी चाल नये पास होकर आये डाक्टर को कैसी मालूम पड़ती होगी। दोपहर को सन्नाटा रहता था। बीच बीच में एक आध चील आकाश में बहुत दूर पर बोल उठती थी। बगिया की दीवार के उस पार सड़क पर बिसाती "सुर्मा, मिस्सी, कंघी, चूड़ी" की सदा लगा जाते थे। मैं एक सफ़ेद चादर बिछा कर उस पर लेटती थी। एक खुले हाथ को कोमल बिछौने पर अनादर के भाव से रख कर सोचती थी कि इस हाथ को इस अदा से किसी ने जैसे देख पाया, किसी ने जैसे दोनों हाथों से उठा लिया, कोई जैसे इस मेरे हाथ की गुलाबी हथेली पर एक चुम्बन रख कर फिर लौटा जा रहा है।—अच्छा, इस जगह पर अगर यह क़िस्सा ख़तम हो जाय तो कैसा हो?"

मैंने कहा—कुछ बुरा न हो। ज़रा अधूरा तो अवश्य रह जायगा, लेकिन उसे अपने मन से सोच कर पूर्ण कर लेने में बाकी रात मज़े से कट जायगी।

उसने कहा—"लेकिन ऐसा होने से यह कहानी बहुत ही गम्भीर हो जायगी। इसकी दिल्लगी कहाँ रहेगी? इसके भीतर का मुर्दे का ढाँचा अपने सब दाँत खोल कर कैसे दिखाई देगा?—

"अच्छा, उसके बाद सुनो। ज़रा डाक्टरी का रोजगार चल निकलते ही डाक्टर ने हमारे घर के नीचे के खण्ड में अपना डाक्टरखाना खोला। मैं उस समय बीच बीच में हँसते हँसते दवाओं के बारे में, विष के बारे में, उनसे पूछताछ करती थी। कई बार यह भी पूछा कि क्या करने से आदमी सहज में मर जाता है। इन डाक्टरी की बातों के वर्णन में डाक्टर का मन खूब लगता था। सुनते सुनते मृत्यु जैसे घर के आदमी के समान जान पड़ने लगा। मुझे प्रेम और मरण यही दो वस्तुएँ पृथ्वी भर में व्याप्त देख पड़ने लगीं।

"मेरी कहानी समाप्त हो आई है—अब थोड़ी ही और है।"

मैंने कहा—रात भी अब थोड़ी ही है।

उसने फिर कहा—"कुछ दिन से मुझे देख पड़ने लगा कि डाक्टर साहब बहुत ही दुचित्ते से रहते हैं; मेरे आगे लज्जित—झेंपे—से रहते हैं। एक दिन मैंने सुना कि डाक्टर का ब्याह है। ब्याह शहर ही में है। लेकिन यह बात मुझे ठीक ब्याह ही के दिन मालूम हुई। उस दिन सबेरे डाक्टर ने आकर कुछ सामान (गहना, बर्तन, वग़ैरह) दादा से माँगा। दादा ने मुझसे सब सामान निकलवाकर डाक्टर को दिया। मुझसे रहा न गया। मैंने दादा से पूछा—डाक्टर साहब यह सामान क्या करेंगे? दादा ने कहा—आज उनका ब्याह है।

"क्या यह सच है!" कह कर मैं हँसने लगी।

"लेकिन अपने मन में मैंने कहा—मुझसे यह ख़बर छिपा कर मेरा अपमान करने का मतलब क्या है ? मैंने क्या उनके पैर पकड़ कर कहा था कि ऐसा काम करोगे तो मैं सिर फोड़ कर जान दे दूँगी ? मर्दों पर विश्वास करना भूल है । पृथ्वी पर मैंने केवल एक पुरुष देखा है और घड़ी ही भर में उसके बारे में मुझे जानकारी हासिल हो गई ।

"दोपहर के बाद डाकृर एक बार फिर मेरे घर आये । मैंने आवश्यकता से अधिक हँसते.हँसते कहा—डाकृर साहब, आज क्या आपका ब्याह है ?

"मेरी प्रफुल्लता देख कर डाकृर केवल झेपे ही नहीं, बल्कि बहुत ही उदास हो गये ।

"मैंने पूछा—आतशबाज़ो, रोशनचौकी और बैण्ड वग़ैरह है या नहीं ?

"यह सुन कर उन्होंने एक ठण्डी साँस लेकर कहा—ब्याह क्या ऐसे बड़े आनन्द की बात है ?

"मैं तो यह सुनकर हँसते हँसते लोट पोट होगई । ऐसी बात तो मैंने कभी सुनी ही नहीं । मैंने कहा—यह न होगा । आतशबाज़ी, 'रोशनचौकी और बैण्ड वग़ैरह सब होना चाहिए ।

"दादा के पास जाकर मैं उनके पीछे पड़ गई । डाक्टर की बरात में बराती बहुत न थे । केवल दुलहा, पुरोहित और

नाई की बरात थी। वह भी सौ क़दम के फ़ासले पर जाने को थी। इसीसे बहुत बड़ी तैयारी की ज़रूरत न थी। तथापि मेरे आग्रह से दादा को आतशबाज़ी, रोशनचौकी और बैण्ड का प्रबन्ध अवश्य करना पड़ा।

"छः बजे के बाद डाक्टर साहब एक रोगी को दवा देने डाक्टरख़ाने में आये। दवा देकर दादा के पास आये। दोनों ने बैठकर एक एक प्याला शराब का पिया। दोनों को नित्य का यह अभ्यास हो गया था।

"शाम हुई, धीरे धीरे चाँद निकल आया। मैंने जाकर कहा—डाक्टर साहब क्या भूल गये? बरात कब जायगी?

"यहाँ पर एक साधारण बात कह देना आवश्यक है। इधर मैं एक दिन मौक़ा पाकर डाक्टरख़ाने से थोड़ी सी संखिया ले आई थी। वही थोड़ी सी छिपा कर डाक्टर के शराब के गिलास में उस समय छोड़ दी। संखिया कहाँ रक्खी है, यह बात मुझे डाक्टर से ही मालूम हुई थी।

"डाक्टर ने एक साँस में गिलास ख़ाली करके मेरी ओर दीन दृष्टि डालकर रुँधे हुए कण्ठ से कहा—तो फिर जाता हूँ।

"डाक्टर के दरवाजे पर बैण्ड बजने लगा। मैंने एक बनारसी सारी पहनी। सन्दूक़ में जितने गहने रक्खे थे, सब निकाल कर पहन लिये। माँग में बहुत सा सेंदुर लगाया। मैंने इस तरह

सज धज कर उसी बगिया में पेड़ के नीचे सफ़ेद चादर बिछाई और लेट गई ।

"बड़ी सुन्दर रात थी । चाँदनी खिली हुई थी । सो रहे आदमियों की थकन दूर करता हुआ दक्षिण पवन चल रहा था। जुही के फूलों की महक बगिया में भरी हुई थी ।

"बैण्ड का शब्द जब धीरे धीरे दूर चला गया, चाँदनी जब अन्धकार में लीन होने लगी,—तरु-पल्लव, आकाश और घर बार समेत पृथ्वी जब मेरे चारों ओर से माया की तरह दूर हटने लगी, तब मैं आँखें बन्द करके हँसी ।

"इच्छा थी कि जब लोग आकर देखेंगे तब यह हँसी मेरे ओठों के पास रङ्गीन नशे की तरह बनी रहे । इच्छा थी कि जब मैं अपने प्रिय से अनन्त रात्रि में धीरे धीरे मिलने जाऊँगी तब इस हँसी को यहाँ से अपने मुँह में ले जाऊँगी । लेकिन कहाँ है वह अनन्तरात्रि का प्रियसमागम ? मेरा वह विवाह-वेश ही कहाँ है ? अपने भीतर एक तरह का खट खट शब्द सुन कर मैं जाग पड़ी । देखा, मेरा ढाँचा लिये तीन बालक अस्थि-विद्या सीख रहे हैं । हृदय में जहाँ पर सुख और दुख से धक-धक करने लगता था और जहाँ पर प्रतिदिन एक एक करके जवानी के फूल की पखड़ियाँ खिलती थीं वहीं बेत से इशारा कर के मास्टर साहब बतला रहे हैं कि इस हड्डी का यह नाम है । और, वह जो आख़िरी हँसी मेरे ओठों के पास थी उसका कुछ चिह्न भला तुमने देख पाया था ?

"क़िस्सा कैसा मालूम हुआ?"

मैंने कहा—"बड़े मज़े का क़िस्सा है।"

इसी समय कौए 'काँ काँ' करने लगे। मैंने कहा—"क्या अभी हो?" कुछ उत्तर नहीं मिला।

आँखें खोल कर देखा, कमरे में सबेरे का प्रकाश फैला हुआ था।

मुक्ति का उपाय।

(१)

रामलाल लड़कपन से गम्भीर प्रकृति का आदमी था। वह प्रायः बुड्ढों ही के पास बैठता था और उसकी प्रकृति के अनुसार वही ठीक भी जँचता था। ठंढा पानी और हँसी-दिल्लगी उसे एकदम असह्य थी। एक तो वह गंभीर था, उसके ऊपर साल के अधिकांश समय में मुखमण्डल के चारों ओर ऊनी काले रङ्ग का गुलूबन्द लपेटे रहने से वह बहुत ही ऊँचे दर्जे का आदमी जान पड़ता था। थोड़ी ही अवस्था में उसके ओठ और गाल दाढ़ी-मूछ के बालों से ढक गये थे। इससे मुख-मण्डल भर में हँसी के आने के लिए तिल भर भी जगह नहीं बची थी।

उसकी स्त्री पन्ना की अवस्था थोड़ी थी और उसका मन दुनिया की बातों में बेतरह उलझा हुआ था। वह स्त्री-शिक्षा की पुस्तकें पढ़ना चाहती थी और स्वामी को ठीक देवता की तरह पूज करके भी उसे सम्पूर्ण सन्तोष नहीं होता था। वह ज़रा हँसना-बोलना पसन्द करती थी। खिल रहा फूल जैसे वायु के आन्दोलन और सबेरे के प्रकाश के लिए व्याकुल होता है वैसे ही वह भी अपनी नई जवानी की अवस्था में स्वामी से

आदर और हँसी-दिल्लगी का आनन्द पाने की प्रत्याशा रखती थी। किन्तु स्वामी इन बातों का मौक़ा मिलने पर उसको भाषा-भागवत पढ़ाता था, शाम को सरल-गीता सुनाता था और उसकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए बीच बीच में शारीरिक शासन से भी ग़ाफ़िल न रहता था। जिस दिन पन्ना के तकिये के नीचे "कृष्णकान्त का दानपत्र" देखने को मिला उस दिन रामलाल ने उस छोटी तबियत की स्त्री को रात भर रुलाकर ही कल की। एक तो उपन्यास पढ़ना और उस पर पति को धोखा देना! जो कुछ हो, निरन्तर आदेश उपदेश धर्मनीति और दण्डनीति के द्वारा अन्त को पन्ना के मुँह की हँसी, मन का सुख और जवानी का जोश एकदम निकाल कर फेक देने में स्वामी देवता को सम्पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई।

किन्तु जो आदमी आसक्तिरहित होता है उसके लिए संसार में अनेक विघ्न उठ खड़े होते हैं। रामलाल के पहले एक लड़का हुआ, दुबारा एक लड़की हुई। संसार का बन्धन और जकड़ गया। बाप के बकने से इतनी बड़ी गम्भीर प्रकृति आदमी रामलाल को भी दफ्तरों के दरवाज़ों पर नौकरी की उम्मेदवारी में टक्करें खानी पड़ीं। लेकिन नौकरी होने की कोई उम्मेद न देख पड़ी।

तब रामलाल ने अपने मन में सोचा, मैं बुद्धदेव की तरह संसार को त्याग दूँगा। यह सोच कर एक दिन घनी अँधेरी रात को वह घर से निकल कर चल दिया।

(२)

बीच में और भी एक इतिहास कहने की ज़रूरत है।

नौगवाँ के रहनेवाले कालीचरन के एक लड़का था। नाम था, मक्खनलाल। ब्याह के दूसरे ही साल कोई बाल-बच्चा न होने पर पिता के अनुरोध से और कुछ नयेपन के प्रलोभन से मक्खनलाल ने और एक ब्याह कर लिया। इस ब्याह के बाद ही दोनों स्त्रियों ने क्रमशः मक्खनलाल को सात लड़कियों और एक लड़के का बाप बना दिया।

मक्खन बहुत ही शौकीन और चञ्चल स्वभाव का आदमी था। किसी तरह के बड़े कर्त्तव्य के बन्धन में पड़ना उसे बिलकुल ही नापसन्द था। एक तो बाल-बच्चों का बोझ, और उसके ऊपर जब दो मल्लाह दो तरफ़ से झोंके मारने लगे तब मक्खन भी एक रात को ग़ोता लगा गया।

बहुत दिनों से उसका पता नहीं है। कभी कभी सुन पड़ता है कि एक ब्याह में कैसा सुख होता है, यह अनुभव प्राप्त करने के लिए उसने छिपा कर किसी गाँव में और एक ब्याह कर लिया है; अभागे को इस तीसरे ब्याह से कुछ शान्ति भी मिली है। कभी कभी नौगवाँ को देखने के लिए उसका बहुत जी चाहता है, लेकिन फँस जाने के खटके से नहीं आता।

---

(३)

कुछ दिन घूमते घूमते विरक्त रामलाल नौगवाँ में आकर उपस्थित हुए। राह के किनारे एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर लम्बी साँस लेकर बोले—"अहो, वैराग्यमेवाभयम्। औरत लड़का दौलत आदमी परिवार कुछ किसी का नहीं है। का ते कान्ता कस्ते पुत्रः।

इसके बाद यह गान शुरू किया:—

सुन रे सुन भोले मन !
सुन साधु की उक्ति, कैसे मुक्ति,
वही सुयुक्ति कर ग्रहण !
भव की सीप तोड़ मुक्ति-मुक्ता करले चयन !
ओ रे ओ भोले मन, भोले मन रे !

एकाएक गाना बन्द हो गया। उन्हें जान पड़ा, सामने उनके पिता आरहे हैं। रामलाल ने कहा—अरे वह कौन? क्या पिताजी हैं? जान पड़ता है, पता पागये! अब तो बड़ी मुशकिल हुई। फिर मुझे संसार के गढ़े में घसीट लेजायँगे। अच्छा, इस खेत की आड़ में खिसक जाना चाहिए।

(४)

रामलाल जल्दी से खेत के भीतर हो कर पास ही के एक घर में घुस गये। वृद्ध, घर का मालिक, आँगन में खड़ा

तमाखू-चूना मल रहा था। साधु-वेश-धारी रामलाल को घर में घुसते देख कर वृद्ध ने पूछा—कौन हो जी तुम ?

रामलाल ने कहा—बाबा मैं संन्यासी हूँ।

वृद्ध ने कहा—संन्यासी ! देखूँ देखूँ, इधर उजियाले में आओ।

यह कह कर, उजियाले में ले जाकर, रामलाल के मुँह के ऊपर झुक कर, जिस तरह बुड्ढा आदमी बड़े कष्ट से पोथी पढ़ता है उस तरह निहार निहार कर, वह वृद्ध आप ही आप यों बड़बड़ाने लगा—"यही तो मेरा मक्खनलाल है ! वैसी ही नाक है, वैसीही आँखें हैं, केवल मत्था ज़रा चौड़ा हो गया है और दाढ़ी-मूछों ने बेतरह बढ़ कर तमाम चेहरे को छिपा लिया है !" यों कह कर उस वृद्ध ने स्नेह-पूर्ण भाव से रामलाल की दाढ़ी पर दो एक बार हाथ फेरा और कहा—बेटा, मक्खन !

यह बुड्ढा ही मक्खनलाल का बाप कालीचरन था।

रामलाल ने विस्मय के साथ कहा—मक्खन ! मेरा नाम तो मक्खन नहीं है। पहले इस देह का चाहे जो नाम रहा हो, लेकिन इस समय इस देह का नाम है चिदानन्द स्वामी। जी चाहे तो परमानन्द भी कह सकते हो।

वृद्ध ने कहा—सो बेटा तू इस वक्त अपने को चाहे जो कह, लेकिन मैं यह नहीं भूल सकता कि तू मेरा मक्खन है। —बेटा, तुझे क्या दुःख था जो तू घर छोड़ कर चला गया ! तुझे काहे की कमी थी ? राम रक्खे तेरे दो स्त्रियाँ हैं। बड़ी

को न प्यार करता हो तो छोटी मौजूद है। लड़के-बालों का भी दुख नहीं है। दुश्मनों की आँखों में काँटे, परमेश्वर की दी सात लड़कियाँ और एक लड़का है। मैं बुड्ढा अब कितने दिन जीता रहूँगा। तेरी गिरिस्ती तेरी ही होगी!

रामलाल ने सँभल कर कहा—ऐं! सुन कर भी रोंएँ खड़े हो आते हैं!

इतनी देर के बाद रामलाल को असल मामला मालूम हुआ। उसने सोचा, बुरा क्या है, दो चार दिन वृद्ध का लड़का बन कर ही यहाँ छिपा रहूँ। उसके बाद पता न लगने पर जब पिताजी लौट जायँगे तब यहाँ से सटक चलना होगा।

रामलाल को फिर कुछ न बोलते देख कर वृद्ध को उसके मक्खनलाल होने में कुछ भी सन्देह नहीं रहा। उसने उसी समय कलुआ बारी को बुला कर कहा—जा, गाँव में सब से कह दे कि मेरा मक्खन लौट आया है।

(५)

देखते ही देखते गाँव के लोगों की भीड़ लग गई। गाँव के अधिकांश लोगों ने कहा—वही है। किसी किसी ने सन्देह भी प्रकट किया। लेकिन विश्वास करने के लिए लोग इतने उतावले हो रहे थे कि जिन्होंने कुछ सन्देह प्रकट किया उन पर सब लाल-पीले पड़ने लगे। जैसे सन्देह करनेवाले लोग जानकर रङ्ग में भङ्ग करने आये हैं; वे भूत पर भी विश्वास

नहीं करते, ओझा को भी नहीं मानते; अचम्भे की बातें सुन कर जब सब लोग अवाक् हो जाते हैं तब ये प्रश्न पर प्रश्न करते हैं—बात पूछते हैं, फिर बात की जड़ पूछते हैं। एक तरह से उन्हें नास्तिक ही कहना चाहिए। ख़ैर, भूत पर विश्वास न करने से कोई वैसी हानि नहीं है; लेकिन बुड्ढे बाप के खोये हुए लड़के पर विश्वास न करना तो बड़े ही हृदयहीन पुरुष का काम है। अस्तु, सब ओर से डाँट खा कर सन्देह करने वाले लोगों का दल चुप हो रहा।

रामलाल के अत्यन्त भयानक अटल गाम्भीर्य की ओर कुछ भी ध्यान न देकर गाँव के दिल्लगीबाज़ों ने उन्हें घेर लिया। कोई कोई कहने लगा—अरे वाह, मक्खन तो महामुनि बन आये हैं। अरे यार तुम तो बड़े शौक़ीन और रसिया थे। आज यह परशुराम का पार्ट कहाँ से सीख आये हो?

उन्नत-हृदय रामलाल को ये बातें तो वज्र ही के समान जान पड़ीं, लेकिन करते क्या? चुपचाप सब सुन लेना पड़ा। इतने में एक आदमी आकर रामलाल के ऊपर जैसे गिर पड़ा और बोला—अरे यार मक्खन, तुम तो काले काले थे। अपना रङ्ग ऐसा गोरा कैसे कर लिया?

रामलाल ने कहा—योगाभ्यास कर के।

सभी ने कहा—वाह, योग की कैसी भारी महिमा है!

एक ने कहा—भारी के लिए क्या कहना है। भीमसेन ने हनुमान् की पूँछ को पकड़ कर लाख लाख उठाने की चेष्टा की

लेकिन नहीं उठा सके! यह कैसे हुआ? यह भी तो योग-बल ही था।

यह बात सभी को स्वीकार करनी पड़ी।

इसी समय कालीचरन ने आ कर रामलाल से कहा—बेटा, ज़रा घर के भीतर हो आओ।

अब तक रामलाल को इस बात का कुछ ख़याल ही न था। वृद्ध की यह बात सुन कर रामलाल के सिर पर जैसे गाज गिर पड़ी। थोड़ी देर तक चुप रह कर, रोगी जैसे आँख मूँद कर काढ़ा पीजाता है वैसे गाँव के निठल्ले नौजवानों की बोलियाँ ठोलियाँ हज़म करके, रामलाल ने अपनी बचत का एक उपाय ढूँढ़ निकाला। रामलाल ने कहा—पिताजी, मैं संन्यासी हो चुका हूँ, ज़नाने में मैं पैर नहीं रख सकता।

लेकिन रामलाल की यह युक्ति भी किसी काम की न ठहरी। कालीचरन ने गाँव के आदमियों से कहा—तो फिर आप लोगों को ज़रा यहाँ से उठने का कष्ट करना पड़ेगा। यह ज़नाने में न जायगा तो बहुएँ यहीं आ जायँगी। दोनों बहुएँ बहुत व्याकुल हो रही हैं।

सब लोग उठ गये। रामलाल ने सोचा, इस वक्त यहाँ से निकल कर सरपट भागूँ। लेकिन फिर यह सोच कर वह वहीं बैठे रहे कि बाहर निकल कर भागते ही गाँव के लोग कुत्ते की तरह पीछा करेंगे।

जैसे ही मक्खन की दोनों औरतें वहाँ आईं वैसे ही राम-

लाल ने सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया और कहा—माइयो, मैं तुम्हारा लड़का हूँ!

वैसे ही रामलाल की नाक के सामने एक चूड़ियों से सुशोभित हाथ तरवार की तरह नाच गया और काँसे की झनकार ऐसी आवाज़ में सुनाई पड़ा—अरे अभागी, तू ने माई किसे कहा!

साथ ही उससे भी दो सुर ऊँची आवाज़ में किसी ने कहा—क्या आँखें फूट गई हैं! सूझ नहीं पड़ता!

अपनी स्त्री के मुँह से ऐसी मुहावरेदार हिन्दी सुनने का अभ्यास न होने के कारण रामलाल ने बहुत ही दीन भाव से हाथ जोड़कर कहा—आप लोग भूल रही हैं! मैं यहाँ रोशनी में खड़ा होता हूँ, आप लोग ज़रा ग़ौर करके देखिए।

पहली और दूसरी स्त्री ने क्रमशः यों कहना शुरू किया।—

पहली—बहुत देखा है!

दूसरी—देखते देखते इतने दिन बीत गये हैं!

पहली—तुम दूध-पीते बच्चे नहीं हो, आज फिर से नहीं पैदा हुए हो।

दूसरी—तुम्हारे दूध के दाँत बहुत दिन हुए गिर चुके हैं।

पहली—तुम्हारे आगे के पेड़ भी अब गिर पड़े होंगे।

दूसरी—हाँ हाँ, तुमको यमराज भूल गये हैं तो क्या हम भी भूल जायँगी! इत्यादि इत्यादि।

इस तरह का एकतर्फा प्रेमालाप कब तक जारी रहता सो ठीक तौर से कहा नहीं जा सकता। क्योंकि रामलाल के बिलकुल ही बोलने की शक्ति न थी, वह चुपचाप खड़ा था। इसी समय, हल्ला गुल्ला सुनकर और दरवाज़े के सामने लोगों की भीड़ जमा होते देखकर बुड्ढा उस जगह गया और बोला—"इतने दिन तक मेरे घर में सन्नाटा था, कहीं कोई चूँ न करता था! आज मालूम पड़ता है कि मेरा मक्खन लौट आया है!

रामलाल ने हाथ जोड़कर कहा—बाबा, अपनी बहुओं के हाथ से मुझे बचाओ!

कालीचरन ने कहा—"बेटा, बहुत दिनों के बाद आये हो, इसीसे पहले पहल ज़रा बुरा मालूम पड़ता है। अच्छा, बहुओ, इस वक्त तुम जाओ! मक्खन तो अब यहीं रहेगा। मैं अब इसे किसी तरह जाने न दूँगा।

दोनों औरतों के चले जाने पर रामलाल ने कालीचरन से कहा—बाबा, मुझे अच्छी तरह मालूम होगया कि आपका लड़का घर छोड़ कर क्यों चला गया है। अच्छा, अब मैं प्रणाम करता हूँ—जाता हूँ।

यह सुनते ही बुड्ढे ने इस ज़ोर से रोना-चिल्लाना शुरू किया कि महल्ले के लोग समझे मक्खन ने अपने बाप को मारा है। सब लोग दौड़ आये। सब ने आकर रामलाल को जता दिया कि ऐसा फ़क़ीरी का ढोंग यहाँ नहीं चलेगा। भलेमानुस

के लड़के की तरह रहना होगा। एक ने कहा—अरे यह परमहंस नहीं, बगलाभगत है।

गम्भीरता, दाढ़ी-मूछ और गुलूबन्द के जोर से रामलाल ने ऐसी और इतनी बुरी बातें कभी नहीं सुनी थीं। जो हो रामलाल को भागने का सुभीता नहीं रहा। गाँव के लोग चौकसी रखने लगे। ख़ुद ज़मींदार कालीचरन के पक्ष में होगया।

(६)

रामलाल ने देखा, ऐसा कड़ा पहरा है कि मरने के पहले इस घर से बाहर निकलना कठिन है। वह अकेले घर में बैठकर गुनगुनाने लगा—

सुन साधु की उक्ति, कैसे मुक्ति,
वही सुयुक्ति कर ग्रहण।

कहना न होगा, रामलाल का लक्ष्य ज्ञान के आध्यात्मिक अर्थ की ओर न था।

इस तरह भी कुछ दिन कट सकते थे। लेकिन मक्खन के आने की ख़बर पाकर पहली औरत के भाई और बहनें, जो उसी गाँव में रहते थे, आकर दाख़िल हुए और उन्होंने रामलाल को नाकों चने चबवा दिये।

उन्होंने आते ही पहले रामलाल की दाढ़ी-मूछें पकड़कर घसीटना शुरू किया। उन्होंने कहा—यह दाढ़ी-मूछ सचमुच की नहीं है। भेस बनाने के लिए ऊपर से लगा ली गई है।

मूछें पकड़कर खांच खाँच करने से रामलाल ऐसे बहुत बड़े आदमी के लिए भी अपने माहात्म्य की रक्षा करना दुष्कर हो उठता है । इसके सिवा कानों पर भी कम अत्याचार न था । एक तो मलकर, दूसरे ऐसी भाषा सुनाकर जिससे बिना मले भी कान लाल हो जाते हैं ।

इसके सिवा वे लोग रामलाल से ऐसे गीत गाने की फ़र्माइशें करने लगे जिनकी किसी तरह की आध्यात्मिक व्याख्या करने में आज कल के बड़े बड़े नये पण्डित भी हार मान जायँगे । सोने के समय उन लोगों ने रामलाल के कुछ कुछ खुले हुए गालों में चूना और स्याही लगा दी, भोजन के समय नमक की जगह शक्कर दे दी, पान में मिस्सी डाल दी, भोजन के समय पीढ़े के नीचे सुपारी रख कर उन्हें बेलन की तरह लुढ़का दिया । इस तरह सैकड़ों उपायों से उन्होंने रामलाल के गगनस्पर्शी गाम्भीर्य को गिराकर मिट्टी में मिला दिया ।

रामलाल ख़फ़ा होकर, फूलकर, थरथरा कर, डाँटकर किसी तरह इन उपद्रवकारियों को डरा न सके । उलटे फल यह हुआ कि सब लोग उनको बनाने और चिढ़ाने लगे । इस पर आफ़त यह थी कि भीतर से एक मधुर कण्ठ की ज़ोर की हँसी सुन पड़ती थी । वह हँसी कुछ कुछ पहचानी सी जान पड़ती थी और उससे चित्त और भी अधिक चञ्चल हो उठता था ।

यह परिचित कण्ठ हमारे पाठकों के लिए भी अपरिचित नहीं है । इतना ही कहना काफ़ी होगा कि कालीचरन एक

नाते से पन्ना (रामलाल की स्त्री) के मामा होते हैं। ब्याह के बाद पन्ना को जब उसकी सास बहुत सताती थी तो बे-मा-बाप की पन्ना किसी-न-किसी नातेदार के यहाँ कुछ दिन के लिए चली जाती थी। कुछ दिन से वह अपने मामा के घर आई है और आड़ से एक बड़े ही मज़े का तमाशा देखा करती है। हम यह बताने में असमर्थ हैं कि उस समय दिल्लगी के साथ ही कुछ प्रतिहिंसा का भी भाव पन्ना के मन में हो आया था या नहीं। इस बात का निश्चय चरित्र-तत्व के जानने वाले पाठक आप कर लेंगे।

जिनसे दिल्लगी का नाता था वे तो बीच बीच में विश्राम भी ले लेते थे, लेकिन जिनसे स्नेह का नाता था उनके हाथों से छुटकारा पाना कठिन था। एक लड़का और सात लड़कियाँ रामलाल को घड़ी भर के लिए भी नहीं छोड़ती थीं। बाप से स्नेह वसूल करने के लिए उनकी मातायें उन्हें दमभर भी भीतर नहीं रहने देती थीं। इसके सिवा दोनों सौतों में लागडाँट थी। दोनों ही इस बात की कोशिश करती थीं कि मेरी सन्तान को अधिक आदर प्राप्त हो। दोनों ही अपनी अपनी सन्तान को उत्तेजित करने लगीं। गले में हाथ डालने, गोद में बैठने और मुँह चूमने आदि प्रबल स्नेह प्रकट करने के कामों में एक दल दूसरे दल को जीतने का यत्न करने लगा।

यह तो कहने की कुछ ज़रूरत नहीं है कि रामलाल बहुत ही रूखी तबियत के आदमी थे। अगर ऐसा न होता तो वह

अपनी सन्तान को छोड़ कर घर से जा न सकते। बच्चे भक्ति करना नहीं जानते, उन्होंने साधुता पर मुग्ध होना नहीं सीखा। इसीसे रामलाल को बच्चों पर तिल भर भी अनुराग न था। रामलाल बच्चों को कीड़े-पतङ्गों की तरह अपने से दूर रखना चाहते थे। आज कल वह नित्य टीड़ी-दल ऐसे बच्चों से घिरे रहने के कारण आदि से अन्त तक बर्जाइस टाइप की छोटी बड़ी टिप्पणियों से परिपूर्ण ऐतिहासिक प्रबन्ध की तरह शोभा को प्राप्त हुए। जो लड़की-लड़के अवस्था में कुछ बड़े थे वे भी रामलाल के साथ सभ्यता का व्यवहार नहीं करते थे। गम्भीर और विरक्त रामलाल की आँखों में आँसू भर आते थे, और वे आँसू आनन्द के न थे।

पराये लड़के जब अनेक स्वरों से रामलाल को "बप्पा बप्पा" कह कर पुकारते थे, तब रामलाल की इच्छा होती थी कि वह सांघातिक पाशव-शक्ति का प्रयोग करें; लेकिन भय के मारे वह ऐसा कर न सकते थे। मुँह बनाये आँखें टेढ़ी किये चुपके बैठे रहते थे।

अन्त को रामलाल ने बहुत कुछ गुल-गपाड़ा मचाकर कहा—मैं जाऊँगा, देखूँ, मुझे कौन रोकता है!

तब गाँव के आदमियों की सलाह से बुड्ढे ने एक वकील बुलवाया। वकील से और रामलाल से यों वार्त्तालाप हुआ।—

वकील—जानते हो, तुम्हारे दो औरतें हैं।

रामलाल—जी, यहीं यह बात मालूम हुई है।

वकील—और तुम्हारे सात लड़कियाँ और एक लड़का है। उनमें दो लड़कियाँ ब्याहने लायक़ हैं।

रामलाल—जी, मुझे तो देख पड़ता है, आप मुझसे बहुत अधिक जानते हैं!

वकील—अपने इतने बड़े परिवार को खाना-कपड़ा देना तुम्हारा फ़र्ज़ है। अगर तुम अपने फ़र्ज़ से मुँह मोड़ोगे तो तुम्हारी दोनों अनाथ औरतें अदालत में तुम पर दावा करेंगी। तुमको होशियार करने के लिए यह बात मैं पहले ही से कहे रखता हूँ।

रामलाल अदालत को बहुत डरते थे। वह जानते थे, वकील लोग जिरह के समय महापुरुषों के मान, मर्यादा और गाम्भीर्य का कुछ ख़याल नहीं करते—ज़ाहिरा तौर पर अपमान करते हैं और अख़बारों के रिपोर्टर उन बातों को अख़बारों में लिख भेजते हैं। रामलाल की आँखों में आँसू भर आये। वह वकील को विस्तृत रूप से अपना परिचय देने की चेष्टा करने लगे। वकील साहब उनकी चातुरी, तुरत बात बनाने के कौशल और झूठा क़िस्सा गढ़ने की असाधारण क्षमता की बार बार बड़ाई करने लगे। सुनकर रामलाल को दाँतों से अपनी बोटियाँ नोचने की इच्छा होने लगी।

रामलाल को फिर भागने के लिए तैयार देखकर बुड्ढा रोने लगा। गाँव के लोग रामलाल को चारों ओर से घेर कर लगातार गालियों की बौछार करने लगे और वकील ने उनको ऐसा धमकाया कि उनके मुँह से एक बात भी न निकली।

इस पर तुर्रा यह कि आठ बच्चे स्नेह के मारे चारों ओर से उनके लिपट गये। उनकी साँस रुकने लगी। आड़ में खड़ी पन्ना अपने पति की यह दशा देख कर निश्चय नहीं कर सकती थी कि हँसे या रोवे।

रामलाल ने अपने छुटकारे का और उपाय न देखकर अपने बाप के पास पहले ही एक चिट्ठी लिख कर भेज दी थी। वह पत्र पाकर इसी समय रामलाल के बाप आकर मौजूद हुए। लेकिन गाँव के लोग, ज़मींदार और वकील ने उनकी एक न मानी।

यह आदमी रामलाल नहीं मक्खन है, इस बात के अनेक अकाट्य प्रमाण उन लोगों ने दिये। यहाँ तक कि घर में जो महरी काम करती थी उस बुढ़िया को लाकर हाज़िर कर दिया। वह काँपते हुए हाथ से रामलाल की ठोड़ी पकड़कर, मुँह निहार कर, उसकी दाढ़ी पर आँसू बहाने लगी।

जब देखा कि इतने पर भी रामलाल क़ाबू में नहीं आता तब घूँघट काढ़े दोनों औरतें आकर उपस्थित हुईं। गाँव के सब लोग उठकर बाहर चले गये। केवल दोनों औरतें, रामलाल और बच्चे रह गये।

दोनों ललनाओं ने हाथ नचा नचा कर रामलाल से पूछा—किस चूल्हे में—किस नरक में जाने की इच्छा हुई है?

रामलाल कुछ निश्चय न कर सके, इस लिए चुप रहे। किन्तु उनके भाव से यह मालूम हुआ कि किसी ख़ास

नरक की उन्हें चाह नहीं है, यहाँ से किसी तरह निकल पावें, फिर चाहे जिस नरक में जाना पड़े ।

इसी समय एक और औरत आकर उपस्थित हुई । उसने आकर रामलाल के पैर छुए ।

रामलाल पहले तो विस्मित हो गये, उसके बाद ख़ुशी से उछल कर कहा—तुम यहाँ कहाँ पन्ना ?

अपनी या पराई स्त्री को देख कर रामलाल ने इससे पहले कभी इतना प्रेम नहीं दिखलाया था । उन्हें जान पड़ा, साक्षात् मुक्ति की मूर्त्ति सामने खड़ी है ।

❀ ❀ ❀ ❀

और एक आदमी सिर से शाल लपेटे हुए आड़ से यह तमाशा देख रहा था । उसका नाम था मक्खनलाल ! एक अपरिचित निरीह पुरुष को अपनी जगह पर लाञ्छना भोगते देखकर अब तक वह एक तरह का सुख पा रहा था । अन्त को जब पन्ना के आचरण से उसे जान पड़ा कि वह आदमी उसका बहनोई ही है तब दया के मारे वह घर के भीतर गया और बोला—"बहनोईजी, यह तो सब दिल्लगी थी ।" दोनों औरतों की तरफ़ इशारा करके कहा—यह मेरे गले का फन्दा और यह मेरे गले की फाँसी है !

मक्खनलाल के इस असाधारण महत्व और वीरता को देखकर गाँव के सब आदमी अचम्भे में आगये ।

प्रायश्चित्त ।

सुन्दर एक पुराने अमीर घराने की बहुत ही दुलार से पली हुई लड़की है। उसका पति प्यारेलाल पहले तो गिरी दशा में था; लेकिन अब ख़ुद पैदा करके उसने अपनी अच्छी हैसियत बना ली है। जब तक हालत अच्छी न थी तब तक 'बेटी को कष्ट होगा' इस ख़याल से उसके सास ससुर ने अपनी लड़की को सुसराल नहीं भेजा। सुन्दर जब पति के घर आई उस समय वह अच्छी सयानी थी।

ज्ञान पड़ता है, इन्हीं सब कारणों से प्यारेलाल अपनी जवान ख़ूबसूरत औरत को पूरी तौर से अपने वश में नहीं समझते थे। शायद सन्देह करना एक उनके स्वभाव का रोग था।

प्यारेलाल फ़तेहपुर में वकालत करते हैं। घर में स्त्री के सिवा कोई और अपना आदमी न था। अकेली औरत के लिए उन्हें सदा चिन्ता बनी रहती थी। बीच बीच में एकाएक अदालत से गाड़ी कसवा कर मकान चले आते थे। समय के पहले ही इस तरह स्वामी के अकस्मात् आने का कारण कुछ सुन्दर की समझ में न आता था।

बीच बीच में प्यारेलाल नौकरों की अदला-बदली करने लगे। कोई नौकर महीने दो महीने से अधिक नहीं टिकने पाता था। कुछ कामकाज की असुविधा होने के ख़याल से

सुन्दर जिस नौकर के लिए कुछ सिफ़ारिश कर देती थी वह तो उसी दिन जवाब पा जाता था। शानवाली सुन्दर को जितना ही बुरा लगता था उतना ही प्यारेलाल की तरफ़ से अद्भुत व्यवहार होता था।

अन्त में अपने को न सँभाल सकने के कारण प्यारेलाल ने जब कहारी को अकेले में बुलाकर अनेक प्रश्नों से अपना सन्देह प्रकट किया तब वह बात सुन्दर के कानों तक पहुँचने में कुछ भी देर न लगी। शानवाली और थोड़ा बोलनेवाली स्त्री अपमान से चोट खाई सिंहिनी की तरह भीतर ही भीतर फूलने लगी। इस पागलपन के सन्देह ने प्रलय-खड्ग की तरह दोनों के बीच में पड़ कर दोनों को एकदम अलग कर दिया।

सुन्दर के आगे उनका तीव्र सन्देह प्रकट हो जाने पर जब लज्जा जाती रही तब प्यारेलाल खुल्लमखुल्ला रोज़ पग पग पर सन्देह प्रकट करके स्त्री के साथ लड़ाई झगड़ा करने लगे। सुन्दर जितना चुपचाप अनादर का भाव प्रकट करके कोड़े के समान चुटीले तीक्ष्ण कटाक्षों से पति के होश ठिकाने करने की चेष्टा करने लगी उतना ही प्यारेलाल का सन्देह और भी बढ़ने लगा।

इस प्रकार स्वामी के सुख से वञ्चित होकर पुत्र-हीन जवान औरत ने धर्म की ओर मन लगाया। ब्रह्मचारी परमानन्द स्वामी की चेली हो गई और नित्य मन्दिर में जाकर उनके मुख से श्रीमद्भागवत की कथा सुनने लगी। नारी-हृदय का

सारा व्यर्थ प्रेम और स्नेह केवल भक्ति के आकार में ढल कर गुरुदेव के चरण-कमलों में जमा होने लगा।

परमानन्द स्वामी का चरित्र कैसा है, यह बात दूर दूर तक के लोगों को अच्छी तरह मालूम थी। सब लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखते और उनकी पूजा करते थे। प्यारेलाल इनके बारे में खुलासा सन्देह नहीं प्रकट कर सकते थे। उनका सन्देह हृदय के भीतर के पके फोड़े की तरह भीतर ही भीतर पीड़ा पहुँचाने लगा।

एक दिन मामूली बात पर प्यारेलाल ने ज़हर उगल दिया। स्त्री के आगे परमानन्द को बदमाश बगला-भगत कहकर गाली दी। अन्त को कहा कि तुम शालग्राम की बटिया हाथ में ले कर क़सम खाओ कि मन ही मन तुम उस बदमाश को चाहती हो या नहीं?

चोट खाई हुई नागिन की तरह साँस लेकर स्वामी को वैसी ही चोट पहुँचाने के लिए सुन्दर ने झूठमूठ कहा—चाहती हूँ, तुम जो कर सकते हो, करो।

प्यारेलाल ने दरवाज़े पर ताला बन्द कर दिया और आप अदालत चले गये।

सुन्दर से क्रोध के मारे न रहा गया। उसने किसी तरह दरवाज़ा खुलवा लिया और घर से चल दी।

परमानन्द स्वामी एकान्त में सुनसान दोपहर के समय

शास्त्र-पाठ कर रहे थे। बिना बादल की बिजली की तरह सुन्दर ब्रह्मचारी के शास्त्राध्ययन के बीच आ गिरी।

गुरु ने कहा – यह क्या!

चेली ने कहा—अब मुझ से घर का अपमान नहीं सहा जाता। आप ऐसी सङ्कट से मुझे उबार ले चलिए। मैं अपने व्यर्थ जीवन को आप के चरणों की सेवा में लगाऊँगी।

परमानन्द ने कड़ी-डाँट बता कर सुन्दर को उसके घर लौटा दिया। किन्तु, हाय गुरुदेव, उस दिन का टूटा हुआ वह शास्त्र-पाठ का सिलसिला फिर क्या तुम जोड़ सके!

प्यारेलाल ने घर आकर दरवाज़ा खुला देखा। स्त्री से पूछा—यहाँ कौन आया था?

स्त्री ने कहा—कोई भी नहीं, मैं ख़ुद गुरुजी के घर गई थी।

पहले प्यारेलाल का चेहरा फीका पड़ गया और फिर वैसे ही लाल हो आया। प्यारेलाल ने कहा—क्यों गई थी?

सुन्दर ने कहा—मेरी ख़ुशी।

उस दिन से दरवाज़े पर पहरा बिठला कर, स्त्री को घर में क़ैद कर, प्यारेलाल ने ऐसा उपद्रव मचाना शुरू किया कि तमाम शहर में उनकी बदनामी फैल गई।

इस अपमान और अत्याचार की ख़बर से परमानन्द की धर्म-चिन्ता दूर होगई। उन्होंने उस शहर को शीघ्र ही छोड़ देना ठीक और कर्त्तव्य समझा। लेकिन अपमानित और

सताये जा रहे भक्त को छोड़ कर वह वहाँ से किसी तरह न जा सके। ब्रह्मचारी के इन कई दिनों का इतिहास अन्तर्यामी ही जानते हैं।

अन्त को उसी क़ैद के भीतर सुन्दर को गुरुजी का पत्र मिला। उसमें लिखा था—

"मैंने सोचकर देखा, इससे पहले बहुत सी साधना करने वाली स्त्रियाँ कृष्ण के प्रेम में घर बार छोड़कर चली गई हैं। अगर संसार के अत्याचार से भगवद्भजन में कुछ विघ्न होता हो—उसमें मन न लगने पाता हो—तो बतलाना। मैं भगवान् की सहायता से उनकी दासी को उबार कर प्रभु के चरणारविन्दों तक पहुँचाने की चेष्टा करूँगा। फागुन बदी पञ्चमी बुधवार को तीसरे पहर तीन बजे, तुम चाहो तो, गोकुलनाथजी के मन्दिर के पिछवाड़े मुझसे मुलाक़ात हो सकती है।"

सुन्दर ने उस पत्र को लपेट कर जूड़े के भीतर खोंस लिया। फागुन बदी पञ्चमी के दिन नहाने के समय बाल खोल कर सुन्दर ने देखा, चिट्ठी नहीं है। चट ख़याल आया कि शायद किसी वक़्त जूड़ा ढीला होजाने से चिट्ठी बिछौने पर गिर पड़ी है और उसके स्वामी के हाथ लग गई है। वह पत्र पढ़ कर डाह के मारे उसका पति जल रहा होगा, यह सोच-कर सुन्दर को मन ही मन एक प्रकार के ज्वालामय आनन्द का अनुभव प्राप्त हुआ। लेकिन यह कल्पना भी उसके

लिए असह्य होगई कि जिस पवित्र पत्र को उसने अपने सिर पर जगह दी थी वही पत्र उसके कपटी स्वामी का हाथ लगने से कलङ्कित हो गया है। वह जल्दी से पति के कमरे में गई।

उसने जाकर देखा, उसका पति ज़मीन में पड़ा गों गों कर रहा है, मुँह से फेना निकल रहा है और आँखों की पुतलियाँ ऊपर चढ़ गई हैं। दाहने हाथ की बँधी हुई मुट्ठी से वह पत्र छीन कर सुन्दर ने फुर्ती से डाक्टर को बुलवा भेजा।

डाक्टर ने आकर कहा—"आपोप्लेक्सी"। उस समय प्यारेलाल मर चुके थे।

उस दिन प्यारेलाल को एक ज़रूरी मुक़द्दमे में बाहर जाना था। परमानन्द स्वामी इतना नीचे गिर चुके थे कि प्यारेलाल के उस तारीख़ को बाहर जाने की ख़बर पाकर ही सुन्दर को उन्होंने वह चिट्ठी लिखी थी।

तुरन्त ही विधवा हुई सुन्दर ने जैसे कमरे की खिड़की से गुरुजी को मन्दिर के पिछवाड़े चोर की तरह खड़े देखा वैसे ही चौंक कर उसने नज़र नीची कर ली। गुरुजी का कितना अधःपतन होगया है, यह बात बिजली की रोशनी की तरह एकदम उसके हृदय में भासित होगई।

प्यारेलाल के मरने की ख़बर पाकर जब लोग उनके घर पर आये तब उन्होंने देखा, स्वामी की लाश के पास सुन्दर

की भी लाश पड़ी हुई है। मानों प्रायश्चित्त के उपरान्त दोनों सदा के लिए मिल गये हैं।

वर्त्तमान समय में इस अपूर्व सहमरण का वृत्तान्त सुन कर अख़बारों में सती-महिमा पर महीनों लेख निकला किये।

छुट्टी।

लड़कों के दल के मुखिया रतन को चट एक नया खेल सूझ गया। नदी के किनारे एक बड़ा साँखू का लट्ठा, मस्तूल बनाने के लिए, पड़ा हुआ था। निश्चय हुआ कि उसे सब लड़के लुढ़का कर ले चलें।

जिसकी लकड़ी है उसे ज़रूरत के समय कितना विस्मय, कितनी खीझ और कितनी असुविधा होगी, यह सोच कर लड़कों ने आग्रह के साथ रतन के इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

कमर कसकर जब सब लड़के काम में जुटने के लिए तैयार हुए तब रतन का छोटा भाई शम्भू गम्भीर भाव से उस लट्ठे के ऊपर जाकर बैठ गया। लड़के उसकी ऐसी उदार उदासीनता देख कर कुछ सुस्त पड़ गये।

एक ने आकर डरते डरते उसे थोड़ा बहुत ठेला भी, लेकिन वह टस से मस न हुआ। वह असमय-तत्त्वज्ञानी बालक चुपचाप सब खेलों के असार होने के बारे में विचार करने लगा।

रतन ने आकर हुकूमत के साथ कहा—देख मार खायगा, नहीं तो उठ!

उठने की कौन कहे, शम्भू ने और भी मज़बूती से अपना आसन जमा लिया।

ऐसी अवस्था में साधारण लोगों के निकट सरदारी का सम्मान बनाये रखने के लिए रतन का कर्त्तव्य था कि वह दबाव न माननेवाले भाई के गाल में चट से एक थप्पड़ जमा देता। लेकिन हिम्मत नहीं पड़ी। अब उसने ऐसा भाव दिखलाया कि वह चाहे तो अभी शम्भू को ठीक करदे। परन्तु रतन ने वैसा नहीं किया। कारण, उसे पहले से भी बढ़ कर मज़ेदार एक खेल सूझ गया। उसने प्रस्ताव किया कि शम्भू समेत इस लट्ठे को लुढ़का ले चलो।

शम्भू ने इसमें अपना गौरव समझा। लेकिन उसको या उसके किसी साथी को यह ख़याल नहीं आया कि संसार के अन्यान्य गौरवों की तरह इसके साथ विपत्ति (या पतन) लगी हुई है।

लड़के कमर कस कर उस लट्ठे को ठेलने लगे—"मारो ज़ोर हेइया, मार लिया है हेइया।" लट्ठे के पलटने के साथ ही अपने गाम्भीर्य, गौरव और तत्त्व-ज्ञान को लेकर शम्भू ज़मीन पर आ रहा।

खेल के शुरू में ही ऐसा मज़ा देख कर और और लड़के ख़ुश हो उठे। लेकिन रतन कुछ घबरा गया। शम्भू ज़मीन से उठ कर रतन के ऊपर आँधी की तरह झपट कर जहाँ पाया वहीं दुहत्थड़ मारने लगा। रतन की नाक और मुँह में नकोटे मार कर रोता हुआ शम्भू घर की ओर चला। खेल ख़तम हो गया।

रतन ईंटें उठाकर नदी के किनारे पर लगी हुई बेरी से बेर गिराने लगा। उसी समय एक नाव घाट में आकर लगी। उस पर से एक अधेड़ आदमी, जिसके सिर के बाल खिचड़ी और मूछ के बाल काले थे, उतरा। उसने रतन से पूछा—लाला लालविहारी का घर किधर है?

रतन ने बेर झोरते झोरते कहा—"वह उधर है।" लेकिन किधर के लिए उसने इशारा किया, सो कुछ भी समझ में न आया।

उस भले आदमी ने फिर पूछा—किधर है?

रतन ने कहा—मालूम नहीं।

वह फिर बेर गिराने लगा। तब वह आदमी लाचार होकर लाला लालविहारी के घर का पता लगाने के लिए और आदमी की तलाश में आगे बढ़ा।

थोड़ी देर में जंगी ने आकर कहा—रतन दादा, तुमको अम्मा बुला रही हैं।

रतन ने कहा—मैं नहीं जाऊँगा।

तब जंगी उसे ज़बरदस्ती गोद में लेकर चला। रतन हाथ-पैर फटफटाने लगा, पर छूट न सका।

रतन को देखते ही उसकी मा ने डाँट कर कहा—आज फिर तूने शम्भू को मारा!

रतन ने कहा—नहीं, मैंने तो नहीं मारा।

मा ने कहा—फिर झूठ बोले जाता है!

रतन ने सिर हिला कर कहा—कभी नहीं मारा! शम्भू से पूछ लो।

शम्भू से पूछने पर उसने अपनी नालिश का समर्थन करते हुए कहा—हाँ मारा है।

रतन को इस पर इतना क्रोध आया कि उसने जल्दी से जाकर शम्भू के गाल में चट से एक थप्पड़ जमा दिया और कहा—फिर झूठ बात!

शम्भू की ओर से मा ने रतन को पकड़ कर उसकी पीठ पर पाँच चार धमके जड़ दिये। रतन ने मा को पीछे ठेल दिया।

मा ने चिल्ला कर कहा—तू अब उलट कर हाथ चलाने लगा है।

शायद रतन को और भी कुछ मार खानी पड़ती, लेकिन उसी समय वह आदमी घर में दाखिल हुआ, जिसने रतन से लाला लालबिहारी का घर पूछा था। उसने भीतर प्रवेश करते ही कहा—अरे क्या हो रहा है!

रतन की मा विस्मय-मिश्रित आनन्द से कह उठी—कौन दादा! तुम कब आये?

बहुत दिन हुए, रतन की मा के बड़े भाई बंगाल में नौकरी के लिए चले गये थे। इसी बीच में इधर रतन की मा के दो लड़के हुए, वे सयाने भी हो चले हैं। रतन का बाप मर गया है। आज बहुत दिनों के बाद दादा के दर्शन हुए हैं। दो

महीने की छुट्टी लेकर वह घर आये थे। जाने के पहले बहन से मुलाक़ात करने आये हैं।

कुछ दिन खूब हँसी खुशी में बीते। घर जाने के दो एक दिन पहले मामा ने भानजों के पढ़ने-लिखने के बारे में पूछताछ की। मा ने रतन को ढीठ, पढ़ने में मन न लगानेवाला और उजड्ड बतला कर शम्भू के शान्तस्वभाव और विद्यानुराग की बड़ी बड़ाई की।

उनकी बहन ने कहा—रतन ने मेरे नाक में दम कर रक्खा है।

यह सुनकर भाई ने कहा—अच्छी बात है, रतन को मेरे साथ भेज दो। घर में रहेगा। वहाँ इसके पढ़ने-लिखने का भी पूरा प्रबन्ध हो जायगा। मैं भी अब कलकत्ते की नौकरी पर न जाऊँगा। प्रयाग में ही रहूँगा।

विधवा बहन इस प्रस्ताव पर चट राज़ी होगई।

उसने रतन से पूछा—क्यों रे रतन, मामा के साथ इलाहाबाद जायगा?

रतन उछल पड़ा। बोला—जाऊँगा।

रतन को भाई के घर भेजने में विधवा को कुछ आपत्ति न थी। क्योंकि उसे सदा यही खटका लगा रहता था कि किसी दिन वह शम्भू को पानी में न फेक दे, उसका सिर न फाड़ डाले, या इसी तरह का कोई अनर्थ न कर बैठे। तथापि रतन को वहाँ जाकर रहने के लिए इतना आग्रह दिखलाते देखकर वह कुछ उदास सी होगई।

"'कब चलोगे?" कह कह कर रतन ने मामा को परेशान कर डाला। रात को जाने के उत्साह के मारे उसे नींद नहीं आई।

तीसरे दिन चलते समय आनन्द के मारे रतन के मन में ऐसी उदारता आई कि वह अपनी डोर, कनकौआ, गोली, गेंद, ताश वग़ैरह सब शम्भू को देगया।

इलाहाबाद में मामा के घर पहुँचने पर पहले माई से ही बातचीत हुई। यह किसी तरह नहीं कहा जा सकता कि इस अनावश्यक परिवार की बढ़ती से माई को मन-ही-मन कुछ विशेष प्रसन्नता हुई थी। उनके अपने तीन लड़के थे। वह सुख-पूर्वक उनकी देखरेख और प्यार दुलार करती थीं। लड़के भी निष्कण्टक थे। इसी बीच में सहसा एक तेरह साल का अपरिचित लड़का बीच में आ घुसा। माई ने अपने पति को मन ही मन महामूर्ख कहा।

ख़ास कर तेरह चौदह साल की अवस्था वाले लड़के से बढ़कर बेकाम वस्तु और नहीं होती। उसमें न तो शोभा होती है और न वह किसी काम आता है। वह हृदय में स्नेह को भी पैदा नहीं करता और उसके संग का सुख भी विशेष प्रिय नहीं होता। वह तुतलाकर बोले तो वह उसका 'बनना' समझा जाता है। अगर वह समझ की पक्की बात कहता है तो वह 'पुरखा' कहा जाता है। उसकी सभी बातें ढिठाई में दाख़िल होती हैं। वह दिन दिन लड़कपन को छोड़ कर वयो-वृद्धि के साथ साथ रोचकता से शून्य होता जाता है। उसका

लड़कपन का लालित्य और स्वर की मधुरता सहसा कपूर की तरह उड़ जाती है। इसके लिए भी लोग उसे दोष देते हैं। बचपन और जवानी के अनेक दोष माफ़ किये जाते हैं, लेकिन इस अवस्था की कोई अनिवार्य स्वाभाविक त्रुटि भी जैसे असह्य जान पड़ती है।

वह बालक भी सदा अपने मन में सोचता है कि पृथ्वी पर कहीं वह मेल नहीं खाता। इसी कारण अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में वह सदा लज्जित और क्षमाप्रार्थी सा बना रहता है। साथ ही इसी अवस्था में स्नेह पाने की प्रबल कामना हृदय में होती है। इस अवस्था में यदि वह किसी सहृदय मनुष्य से स्नेह या दोस्ती का बर्ताव पाता है तो उसका बेदाम का गुलाम होजाता है। किन्तु उसे स्नेह देने का कोई साहस नहीं करता। क्योंकि उस स्नेह को सर्वसाधारण लोग "बिगाड़ना" कहते हैं। इस कारण उसका चेहरा और भाव मारे मारे फिरनेवाले बे-मालिक के कुत्ते का ऐसा हो जाता है।

अतएव इस अवस्था में अपने मा-बाप के घर को छोड़ कर अन्य किसी अपरिचित स्थान में रहना नरक से भी बढ़ कर हो जाता है। चारों ओर से स्नेह-शून्य खीझ उसके हृदय में काँटों के समान चुभती है। इसी अवस्था में साधारणतः स्त्री-जाति को किसी श्रेष्ठ स्वर्ग का दुर्लभ जीव समझने का आरम्भ होता है। यही कारण है कि स्त्री-जाति का स्नेह न करना, उपेक्षा दिखलाना, दुस्सह जान पड़ता है।

माईं स्नेहहीन दृष्टि से उसे एक पापग्रह के समान देखती थी, यही रतन को सब असुविधाओं से अधिक खटकता था। माईं अगर उससे कोई काम करने के लिए कहती थी तो वह उत्साह और आनन्द के मारे आवश्यकता से अधिक काम कर डालता था। अन्त को जब माईं कहती थी कि "बहुत हो गया, बहुत हो गया। अब तुम्हें वह काम न करना पड़ेगा, जाओ, अब तुम जाकर पढ़ो।" तब उसे अपनी मानसिक उन्नति के लिए माईं की यह चेष्टा अत्यन्त निठुर अन्याय जान पड़ती थी।

घर में ऐसा अनादर था और बाहर गाँव के ऐसा घूमने, खेलने और ऊधम मचाने का सुभीता न था। ऐसे समय उसे अपने गाँव की, साथियों की और मा की याद आती थी।

वह मैदान जहाँ वह कनकौआ लिये उड़ाता फिरता था, वह नदीतट जहाँ वह मनमाने सुर में मनमाने गीत गाता फिरता था, वह नदी जिसमें वह दिन में दस बार फाँद कर पैरा करता था, वे सब साथ खेलनेवाले लड़के, वह उपद्रव, वह स्वाधीनता, और सबसे बढ़कर अविचार अत्याचार करनेवाली मा उसे दिन-रात याद आती थी।

उस लज्जित शङ्कित शिथिल बालक के हृदय को जन्तुओं का ऐसा एक तरह का अन्ध प्रेम, किसी के निकट जाने की अन्ध-इच्छा, किसी चीज़ को न देख कर अव्यक्त व्याकुलता, गोधूलि के समय बे-मा के बछड़े का ऐसा आन्तरिक मा मा करके रोना, मथा करता था।

स्कूल में रतन के बराबर मूर्ख और पढ़ने में मन न लगाने वाला दूसरा बालक न था। कोई बात पूछने पर वह मुँह फैला कर प्रश्नकर्त्ता के मुँह की ओर ताकने लगता था। मास्टर जब धुनकने लगते थे तब वह बोझे से दबे हुए गधे की तरह उस मार को चुपचाप सह लेता था। लड़कों को जब खेलने के लिए छुट्टी मिलती थी तब वह स्कूल के दरवाज़े पर खड़ा हो कर सामने के मकानों की छतों को देखा करता था। उन छतों पर उस दोपहर के समय अगर कोई लड़की लड़का देख पड़ता था तो उसका चित्त चञ्चल हो उठता था।

एक दिन बहुत जी कड़ा करके, बड़ी हिम्मत करके, रतन ने मामा से पूछा—मामा अम्मा के पास कब जाऊँगा?

मामा ने कहा—स्कूल में गर्मियों की छुट्टी हो जाने के बाद जाना। माघ का महीना था। छुट्टी होने में अभी बहुत दिनों की देर थी।

एक दिन रतन ने स्कूल में पढ़ने की किताबें खो दीं। एक तो योंही पाठ याद न होता था, उस पर किताबें खो जाने से रतन और भी लाचार होगया। स्कूल में मास्टर ने बहुत मारा।

इधर उसके ममेरे भाइयों का यह हाल था कि वे स्कूल के और लड़कों के आगे रतन के साथ अपना सम्बन्ध स्वीकार करने में भी लज्जित से होते थे। रतन का किसी तरह का अपमान होते देखकर वे अन्यान्य बालकों से भी अधिक प्रसन्नता प्रकट करते थे।

इस तरह बहुत ही असह्य होने पर रतन ने अपनी माई के पास जाकर बड़े भारी अपराधी की तरह कहा—किताबें खोगई।

ओठों के छोरों पर खीझ की रेखा अङ्कित करके माई ने कहा—अच्छा किया। मैं तुझे महीने में दस दफ़ किताबें ख़रीद कर नहीं पढ़ा सकती।

रतन ने और कुछ नहीं कहा, वहाँ से चला आया। उसे पराया पैसा बरबाद करने के लिए मा ने यहाँ भेज दिया है, यह सोचकर मन में खीझ भी पैदा हुई। अपनी हीनता और दैन्य का ख़याल करके वह जैसे मर गया।

स्कूल से लौटकर आने पर उसी रात को उसका सिर दर्द करने लगा और बदन गर्म हो आया। उसने समझ लिया कि बुख़ार आगया है। उसने सोचा, बीमार होने पर माई को और भी बुरा मालूम पड़ेगा—और भी कष्ट होगा। उसकी इस अकारण बीमारी को माई किस दृष्टि से देखेगी, यह उसे स्पष्ट भासित होगया। रोग के समय मुझसा निकम्मा अद्भुत मूर्ख बालक पृथ्वी पर अपनी मा के सिवा और किसी से सेवा पा सकता है, ऐसी प्रत्याशा करने में रतन को लज्जा मालूम पड़ने लगी।

दूसरे दिन सबेरे रतन घर में न था। चारों ओर पड़ोसियों के यहाँ, स्कूली लड़कों के यहाँ, खोजने पर भी उसका कुछ पता न चला।

उस दिन, रात ही से सावन-भादों की ऐसी झड़ी लगी हुई थी। उसे खोजने में लोगों को व्यर्थ भीगना भी पड़ा। अन्त को कहीं पता न चलने पर रतन के मामा ने पुलीस में ख़बर दी।

दिन भर के बाद शाम के वक़्त एक गाड़ी आकर रतन के मामा के दरवाज़े पर ठहरी। उस समय भी पानी बरस रहा था। सड़क पर घुटनों घुटनों पानी भरा हुआ था।

दो सिपाही रतन को लिये गाड़ी से उतरे। उन्होंने रतन के मामा को पुकारा। रतन के मामा ने बाहर आकर देखा, रतन सिर से पैर तक भीगा हुआ है, देह भर कीचड़ से लथ-पथ है। मुँह और आँखें लाल हो रही हैं और वह काँप रहा है। रतन के मामा दया के मारे रतन को गोद में लेकर भीतर गये।

रतन की माईं उसे देखकर बोल उठी—क्यों पराये लड़के के लिए इतना सिर धुन रहे हो? उसे उसके घर क्यों नहीं भेज देते?

सच तो यह है कि मारे चिन्ता के रतन की माईं ने अच्छी तरह खाया न था और वह नाहक़ अपने लड़कों को भी कई बार ठोंक चुकी थी।

रतन रो उठा। बोला—मैं तो मा के पास जा रहा था। मुझे क्यों पकड़ मँगाया!

उस दिन बालक को बड़े ज़ोर से बुख़ार आया। रात

भर वह प्रलाप बकता रहा। रतन के मामा डाक्टर को बुला लाये।

रतन ने एक बार अपनी लाल लाल आँखें खोल कर धन्नियों की तरफ़ देखते देखते पूछा—मामा, क्या छुट्टी हो गई?

रूमाल से आँसू पोछते पोछते मामा स्नेह के साथ रतन के जल रहे शिथिल शरीर पर हाथ फेरते हुए उसके पास बैठ गये।

रतन फिर आपही आप बकने लगा—अम्मा, मुझे मारो नहीं; मैं सच कहता हूँ, मैंने कोई बदमाशी नहीं की।

दूसरे दिन, दिन को, कुछ देर के लिए वह जैसे सचेत होगया और न-जाने किसे देखने की आशा से आँखें फाड़ फाड़ कर चारों ओर देखने लगा। निराश होकर फिर चुपचाप दीवार की ओर मुँह करके सो रहा।

मामा ने उसके मन का भाव समझ कर, उसके कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से कहा—रतन, तेरी मा को बुलाने के लिए आदमी भेजा है।

तीसरा दिन भी गुज़र गया। डाक्टर ने चिन्तित उदास भाव दिखला कर कहा—हालत बहुत ही ख़राब है।

रतन के मामा रोगी के पास बैठे हुए अपनी बहन के आने की घड़ियाँ गिनने लगे।

रतन फिर सन्निपात के ज़ोर में बकने लगा—"मेरा गेंद न फेंको, शम्भू को न मारो, वह काटा, मेरी डोर न लूटो, देखो देखो मुझे न मारो"—इत्यादि।

इसी समय रतन की मा आँधी की तरह घर के भीतर घुसते ही "मेरा बच्चा, मेरा रतन" कहकर रोने लगी।

रतन के मामा ने बड़ी मुशकिल से उसे चुप कराया। रतन की मा लड़के की अवस्था देख पछाड़ खाकर गिर पड़ी। ज़ोर से चिल्लाने लगी—बेटा रतन, मेरा बच्चा!

रतन ने मानों बहुत ही सहज में उसका उत्तर देते हुए कहा—एँ।

रतन ने धीरे धीरे करवट बदल कर, जैसे किसी की ओर लक्ष्य न करके, धीरे धीरे कहा—मेरी छुट्टी होगई अम्मा, अब मैं घर जाता हूँ।

थोड़ी देर में रतन सदा के लिए छुट्टी लेकर संसार से चल दिया।

———

बाहर और भीतर।

रसिकविहारी रईस का लड़का है, इसी कारण वह ख़र्च करना जानता है उतना क्या, उसका चौथाई भी उसने नहीं सीखा। फल यह हुआ कि पुश्तैनी अमीरी कर उसे किसी आश्रय के ढूँढ़ने की ज़रूरत जान पड़ी।

सुन्दर सुकुमार नौजवान, गाने-बजाने में सिद्धहस्त, काम-काज में बिलकुल भोला, संसार के लिए बिलकुल अनावश्यक रसिकविहारी पहले जिस ठाट बाट से निकलता था उस ठाट से निकलना तो दूर रहा, इस समय भोजनों के भी लाले देख पड़ते हैं। क्योंकि रसिकविहारी ने पैसा पैदा करनेवाली कोई विद्या नहीं सीखी। अन्त को उसे अपना घर छोड़कर परदेस की हवा खानी पड़ी।

इसी बीच में रसिकविहारी के सौभाग्य से राजा रामेश्वर-सिंह का इलाक़ा कोर्ट आफ़ वार्ड से उनको मिल गया। उन्होंने अपने मनोरञ्जन के लिए एक नाटक-मण्डली बनाने का इरादा किया। घूमते-फिरते रसिकविहारी की वहाँ तक पहुँच होगई। रसिकविहारी देखने में सुन्दर था, वह गीत बना लेता था और उसका गाना बहुत ही मधुर जान पड़ता था। इन बातों पर मुग्ध होकर राजा साहब ने आदर के साथ रसिकविहारी को अपना मुसाहब बना लिया।

राजा साहब बी० ए० पास थे। उनमें किसी तरह का
ड या मनमानी करने की सनक न थी। बड़े आदमी के
होकर भी वह नियमित समय पर, यहाँ तक कि
: स्थान पर ही, शयन-भोजन आदि सब काम करते थे।
विहारी एकाएक आकर उनके लिए नशे के समान
ा। रसिक का गाना सुनने में और उनके ऐक्टिंग की
लोचना करने में अक्सर रसोई ठंडी होजाने लगी, सोने
के समय में भी व्यतिक्रम होने लगा। दीवान साहब कहने
लगे, राजा साहब के स्वभाव में अगर कोई दोष है तो वह
रसिकविहारी पर रीझ जाना ही है।

रानी साहब स्वामी से रस-भरे रूसने के भाव से कहती
थीं—न-जाने कहाँ से यह बला आ चिमटी है। आप इसके
फेर में पड़ कर अपने शरीर को वर्बाद कर रहे हैं। न जाने
कब यह बला जायगी!

राजा साहब जवान स्त्री के मुख से ये बातें सुन कर मन
में ख़ुश होते थे—हँसते थे, सोचते थे, "औरतें जिसे प्यार
करती हैं, केवल उसी को जानती हैं। स्त्रियों के शास्त्र में यह
ः बात नहीं लिखी है कि जगत् के अनेक गुणी लोग भी आदर
गु के पात्र हैं। जिसके साथ उनका गठबन्धन हुआ है वही
भो णी है और उनका सारा आदर उसी के लिए है। स्वामी को
लेकिन के लिए आने में घण्टे आध घण्टे की देर होना असह्य है,
न इसका कुछ ख़याल नहीं है कि स्वामी के आश्रित पुरुष

को दूर कर देने से उसे भोजन नहीं मिलेगा।" स्त्रियों का यह वेवेकहीन पक्षपात दूषित हो सकता है, लेकिन राजा साहब उससे कुछ नाखुश नहीं हुए। इसके बाद वह कभी कभी रसिकविहारी की अधिक बड़ाई करके रानी साहब को जलाते और मन ही मन ख़ुश होते थे।

यह राजा-रानी की दिल्लगी रसिकविहारी के लिए हानि-कारक हुई। रानी के विमुख होने से रसिकविहारी के खाने-पीने के प्रबन्ध में गड़बड़ होने लगी। रईसों के नौकर ऐसे आश्रित भले आदमियों के सदा खिलाफ़ रहते हैं। रानी का मुँह पाकर वे तरह तरह से रसिकविहारी का अपमान करने लगे—उपेक्षा दिखाने लगे।

रानी ने एक दिन पुतुआ (नौकर लड़के) से डाँट कर कहा—तू कहाँ ग़ायब रहता है? काम के वक़्त पता ही नहीं रहता।

उसने कहा—सरकार राजा साहब के हुक्म से मुझे दिन भर रसिकविहारी की ही सेवा में रहना पड़ता है!

रानी ने कहा—तू भी बड़ा अहमक है। दिन भर वहाँ रहने की क्या ज़रूरत है? रोटी बनवाकर चला आया कर।

दूसरे ही दिन से यह हाल होगया कि रसिकविहारी की रसोई में जूठन पड़ी भिनभिनाया करती थी, घण्टों पुकारने पर भी पुतुआ का पता न चलता था और एक एक चीज़ के लिए सौ सौ बार कहना पड़ता था। अभ्यास न होने पर भी रसिक-

विहारी कभी कभी अपने हाथ से चौका-बर्तन कर लेता था और कभी कभी रोटी न बना कर भूखा ही रह जाता था । इन बातों के लिए राजा साहब से शिकायत करना रसिकविहारी के स्वभाव के विरुद्ध बात थी । किसी नौकर से झगड़ा करके अपने अनादर का मौक़ा उसने कभी नहीं दिया । इस तरह रसिकविहारी का बाहर से आदर और भीतर से अनादर बढ़ने लगा ।

इधर "सुभद्राहरण" नाटक की रिहर्सल चल रही थी । खेलनेवाले लोग तैयार होगये । दशहरे के दिन राजा साहब की बड़ी बारहदरी में खेल हुआ । राजा साहब ने कृष्ण का पार्ट लिया और रसिकविहारी ने अर्जुन का । "अर्जुन का जैसा गला है वैसा ही रूप है ! वाह वाह !" कहकर दर्शक लोग प्रसन्नता प्रकट करने लगे । सहेंची पर चिकों में रानी साहब भी बैठी थीं ।

रात को राजा साहब ने आकर रानी से पूछा—कैसा नाटक हुआ ?

रानी ने कहा—रसिकविहारी तो खूब अर्जुन बना था ! उसका चेहरा बड़े घर के लड़कों का ऐसा है और आवाज़ भी बड़ी अच्छी है !

राजा ने दिल्लगी के तौर पर कहा—और मेरा चेहरा शायद धोबियों का ऐसा है और आवाज़ भी बुरी है !

"तुम्हारी बात अलग है !" कह कर रानी फिर रसिकविहारी की चर्चा करने लगीं ।

राजा साहब इससे भी अधिक जोश के शब्दों में रानी के आगे रसिक के गुण गा चुके हैं—लेकिन आज रानी के मुँह से उसकी इतनी सी प्रशंसा सुनकर उन्हें जान पड़ा कि "रसिक में गाने-बजाने का जितना गुण है उससे कहीं अधिक बढ़ाकर मूर्ख लोग उसकी तारीफ़ करते हैं! उसका चेहरा क्या है! और गले की मिठास ही क्या है!" कुछ समय पहले राजा साहब भी इसी मूर्खमण्डली में थे। लेकिन एक ही दिन में उनकी विवेचना-शक्ति इतनी बढ़ गई।

दूसरे ही दिन से रसिकविहारी के खाने-पीने का अच्छा प्रबन्ध होगया। रानी ने राजा से कहा—रसिकविहारी को किसी अच्छे मकान में रखना चाहिए। बाहर की कोठरी में उसे तकलीफ़ मिलती होगी। हज़ार हो, वह भी रईस का लड़का है।

राजा ने संक्षेप में रानी की बात उड़ा दी। कहा—हाँ!

रानी ने अनुरोध किया, राजकुमार की पसनी के अवसर पर फिर एक बार नाटक होना चाहिए। राजा ने जैसे सुना ही नहीं।

एक दिन राजा ने पुतुआ को इसलिए डाँटा कि उसने अँगोछा क्यों नहीं छाँटा। उसने कहा—क्या करूँ, रानी साहब के हुक्म से दिन रात रसिकविहारी बाबू के पास रहना पड़ता है।

राजा ने ख़फ़ा होकर कहा—हिश! रसिक बाबू कहाँ के नवाब हैं! क्या अपने हाथ से बर्तन नहीं माँज सकते!

रसिकविहारी का फिर वही हाल होगया।

रानी ने राजा से कहा—जहाँ आप बैठकर रसिक का गाना सुनते हैं वहाँ मैं भी, चिक की आड़ में, ऊपर के कमरे में रहना चाहती हूँ। मुझको रसिक का गाना अच्छा मालूम पड़ता है।

राजा उसी दिन से पहले की तरह यथासमय शयन-भोजन करने लगे। अब गाना-बजाना नहीं होता।

राजा साहब ज़मींदारी का काम-काज दोपहर को देखते थे। एक दिन ज़रा पहले ही फ़ुर्सत मिल जाने के कारण राजा ने भीतर जाकर देखा कि रानी साहब कुछ पढ़ रही हैं। राजा ने पूछा—वह क्या पढ़ रही हो?

रानी ने कुछ लज्जित होकर कहा—"मैंने यह रसिक के गाने की किताब लौंड़ी भेजकर मँगाई है। एक आध गाना याद करूँगी। तुम्हारा शौक तो एकदम जाता ही रहा, गाना-बजाना तो सुनने को मिल नहीं सकता।" उस समय रानी को किसीने यह याद नहीं दिलाई कि बहुत पहले राजा साहब के इस शौक को जड़ से उखाड़ डालने के लिए तुमने भी तो चेष्टा की थी!

दूसरे ही दिन राजा ने रसिकविहारी को विदा कर दिया। उन्होंने इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया कि यह दुर्दशा-ग्रस्त भले आदमी का लड़का कल क्या खायगा?

केवल इतना ही दुख रसिकविहारी को नहीं हुआ। इतने दिनों पास रहने से रसिकविहारी को राजा से सच्चा स्नेह हो

गया था। तनख़्वाह की अपेक्षा राजा का स्नेह उसके लिए क़ीमती होगया था। रसिकविहारी बहुत सोचने पर भी यह न जान सका कि कौन ऐसा चूक पड़ी जो राजा साहब इतना नाराज़ हो गये! एक लंबी साँस लेकर तंबूरे पर ग़िलाफ़ चढ़ा कर रसिकविहारी चला गया। जाते समय बचे हुए दोनों रुपये पुतुआ को इनाम में देता गया।

राधा ।

(१)

राधा और मङ्गल दोनों नदी के किनारे एक टुटहे मन्दिर में मिले। राधा ने कुछ न कहकर अपनी स्वाभाविक गम्भीर दृष्टि से, कुछ डाँटने का ऐसा भाव दिखाकर, मङ्गल की ओर देखा। उसका मतलब यही था कि तुम किस साहस से आज इस कुसमय में मुझे यहाँ बुलाकर लाये हो? मैंने तुम्हारी अब तक सब बातें सुनी हैं, इसीसे क्या तुमको इतनी हिम्मत होगई है?

मङ्गल यों भी राधा को कुछ डरता था, उसपर राधा की इस दृष्टि ने उसे और भी विचलित कर दिया। उसने सोचा था कि जो कुछ कहना है उसे भारी भूमिका के साथ कहूँगा। किन्तु उसे वह आशा छोड़ देनी पड़ी। लेकिन चटपट यहाँ बुला लाने का कोई कारण बतलाये बिना भी बात नहीं बनती। मङ्गल जल्दी से कह उठा—मैं चाहता हूँ कि हम दोनों यहाँ से भाग चलें, और कहीं चलकर ब्याह करलें।

मङ्गल जो कहना चाहता था वह तो उसने ठीक ठीक कह दिया, लेकिन उसके साथ जो दो मीठी बातें करने का विचार किया था वह न पूरा हुआ। मङ्गल की यह बात बिल्कुल ही रूखी, बल्कि अद्‌भुत, जान पड़ी। बात तो कह डाली, लेकिन

वह जैसे सिटपिटा गया। और भी दो-चार बातें कहकर राधा को राज़ी करने की ताक़त उसमें नहीं रही। नदी के किनारे टूटे मन्दिर में दोपहर के समय राधा को बुला लाकर मूर्ख मङ्गल ने केवल यही कहा कि चलो व्याह करें!

राधा कुलीन कान्यकुब्ज की लड़की थी। अवस्था चौबीस बरस की होगी। जैसी परिपूर्ण अवस्था है वैसी ही भरी जवानी है। शरद ऋतु के घाम के समान सुनहला रङ्ग है। वह उसी घाम के समान चुपचाप जगमगा रही है। उसकी दृष्टि दिन के प्रकाश के समान खुली हुई और भयशून्य है।

उसके बाप नहीं हैं, बड़ा भाई है, उसका नाम है सुखदेव। भाई और बहन दोनों का मिज़ाज एक सा है। दोनों बोलते बहुत कम हैं, लेकिन उनके चेहरे पर ऐसा तेज है जो दोपहर के घाम की तरह चुपचाप जलाता है। लोग सुखदेव को अकारण भी डरते थे।

मङ्गल दूसरे स्थान का रहने वाला है। वह राधा के गाँव में पन्द्रह बरस से रहता है। गाँव कानपुर से मील भर पर है। यहाँ चारे का सुभीता देख कर एक साहब ने 'डेरी' खोली थी। मङ्गल का बाप साहब के यहाँ नौकर था। बाप के मरने पर बेटे को साहब का सहारा मिला। साहब की ही कृपा से वह इतना बड़ा हुआ और अब उसी डेरी में काम करता है। जिस समय की बात लिखी जा रही है उस समय साहबों की सहृदयता के ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते थे। मङ्गल के पास

केवल उसकी विधवा बुआ थी। मङ्गल सुखदेव का परोसी था। राधा और मङ्गल दोनों लड़कपन में एक साथ खेले थे। मङ्गल की बुआ राधा को स्नेह की दृष्टि से देखती थी।

मङ्गल की अवस्था सोलह, सत्रह, अठारह, यहाँ तक कि उन्नीस साल की होगई, तो भी, बुआ के बहुत अनुरोध करने पर भी, वह ब्याह करना नहीं चाहता। साहब बहादुर एक हिन्दुस्तानी बालक की ऐसी असाधारण बुद्धि का परिचय पाकर बहुत खुश हुए। उन्होंने समझा कि मङ्गल ने उन्हींको अपने जीवन का आदर्श बनाया है। साहब उस समय तक कॉरे ही थे। इसी बीच में मङ्गल की बुआ भी मर गई।

इधर बित्त बाहर रुपये ख़र्च न कर सकने के कारण राधा का ब्याह भी नहीं हो सकता था। वह भी धीरे धीरे जवान होगई।

पाठकों से यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ी कि विवाह-बन्धन जिस देवता का काम है वह यद्यपि इन दोनों के प्रति अब तक ला पर्वाही दिखा रहा था, लेकिन प्रेम-बन्धन जिस देवता का काम है उसने अपने काम में ढिलाई नहीं की। बूढ़े ब्रह्मा जिस समय ऊँघ रहे थे उस समय जवान कामदेव बड़ी होशियारी से अपना काम कर रहे थे।

भगवान् कामदेव का असर जुदे जुदे लोगों पर जुदे जुदे ढंग से पड़ता है। कामदेव का बहकाया हुआ मङ्गल दो चार अपने दिल की बातें कहने के लिए अवसर खोजता फिरता है,

लेकिन राधा उसे वह मौक़ा नहीं देती—उसकी सन्नाटे से भरी हुई गम्भीर दृष्टि मङ्गल के व्याकुल हृदय में एक प्रकार का भय पैदा कर देती है ।

आज सैकड़ों सिर की कसमें दिलाकर मङ्गल राधा को इस टूटे मन्दिर में ला सका है । इसीसे उसने सोचा था कि जो कुछ कहना है वह सब आज कह दूँगा । इसके बाद या तो ज़िन्दगी मज़े में गुज़रेगी और नहीं तो प्राण दे दूँगा । ऐसे जीवन-सङ्कट के दुर्लभ दिन में इष्ट देवता को सामने पाकर मङ्गल ने कहा—"चलो, चलकर ब्याह कर लें !" इसके बाद ही जिसको सबक़ याद न हो उस विद्यार्थी की तरह वह सिटपिटाकर चुप हो रहा ।

राधा को जैसे यह आशा ही न थी कि मङ्गल ऐसा विचित्र प्रस्ताव करेगा । थोड़ी देर तक वह चुप रही ।

दोपहर की कुछ ऐसी करुण ध्वनियाँ होती हैं जिनका निर्देश करना कठिन है । उनमें से अनेक ध्वनियाँ सन्नाटे में स्पष्ट रूप से सुन पड़ने लगीं । हवा लगने से मंदिर का एक टूटा हुआ किवाड़ा, किसी के हृदय के आर्तनाद की तरह, मृदु-मन्द गति से शब्द करता हुआ धीरे धीरे खुलने-मुँदने लगा । मन्दिर के भीतर बैठे हुए जङ्गली कबूतर 'गुटुर गूँ-गुटुर गूँ' करने लगे । बाहर सेमर के पेड़ पर बैठा हुआ कठफोरवा पक्षी अपनी बड़ी चोंच से खट खट करके काठ फोड़ने लगा । सूखे पत्तों के ढेर में सर सर करता हुआ गिरगिट इधर से उधर निकल गया । मैदान

की ओर से बारम्बार गर्म हवा के झोंके आकर सब पेड़ों के पत्तों को हिलाने लगे । नदी का जल एकदम चञ्चल होकर घाट की सीढ़ियों से टकराने लगा । ये सब अकस्माती अलस शब्द हो रहे थे । उनके बीच में किसी की बाँसुरी की मीठी तान आकर हृदय पर आलस्य की एक गहरी तह जमा रही थी । मङ्गल को राधा के मुँह की ओर देखने का साहस नहीं हुआ । वह मन्दिर की दीवार के सहारे खड़ा हुआ नदी की ओर शान्त दृष्टि से इस तरह देख रहा था जैसे सपना देखता हो ।

कुछ देर बाद उधर से मुँह फिरा कर मङ्गल ने भिक्षुक की सी दीन दृष्टि से राधा की ओर देखा । राधा ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, यह नहीं हो सकता ।

राधा का सिर हिलने के साथ ही मङ्गल की आशा भी मिट्टी में मिल गई । मङ्गल अच्छी तरह जानता था कि राधा की 'नहीं' को 'हाँ' के रूप में बदलना ज़रा टेढ़ी खीर है । मङ्गल ने अपने मन में कहा—प्रबल कुलीनता का अभिमान जिसकी नस नस में भरा हुआ है, वह कभी मुझ ऐसे धाकर (नीची श्रेणी के ब्राह्मण) के साथ ब्याह करने के लिए तैयार नहीं हो सकती । प्यार करना और है और ब्याह करना और है ।

राधा ने सोचा कि मेरे सोच समझ कर काम न करने के कारण ही मङ्गल को ऐसी हिम्मत हुई है । वह उसी घड़ी मन्दिर से जाने लगी ।

अवस्था देख कर मङ्गल ने जल्दी से कहा—मैं कल ही यहाँ से जाने वाला हूँ।

राधा ने पहले यह भाव दिखाने की चेष्टा की कि मुझे फिर क्या! लेकिन यह भाव दिखा न सकी। चलने के लिए पैर नहीं उठा। उसने शान्त भाव से पूछा—क्यों?

मङ्गल ने कहा—साहब विलायत जाते हैं। मैं भी यह नौकरी छोड़ कर कलकत्ते या बंबई चला जाऊँगा।

राधा कई मिनट तक चुप रही। उसने सोच कर देखा, दोनों के जीवन की गति एक ही ओर नहीं है। ऐसी अवस्था में एक का दूसरे को बाँध कर रखना सर्वथा असम्भव है। इसी से धीरे से अस्पष्ट स्वर में उसने कहा—"अच्छा!" मङ्गल को वह उसकी गहरी लंबी साँस के समान जान पड़ा।

केवल इतना ही कह कर राधा फिर जाने के लिए तैयार हुई, इतने में मङ्गल ने चौंक कर कहा—"सुकुल जी!"

राधा ने देखा, सुखदेव मन्दिर की ओर आरहे हैं। उसने समझ लिया कि भाई को उसके यहाँ आने की ख़बर लग गई है। मङ्गल ने राधा पर आफ़त आते देख टूटी दीवार फाँदकर बाहर निकल जाने का इरादा किया। किन्तु राधा ने उसके दोनों हाथ ज़ोर से पकड़ कर रोक रक्खा। सुखदेव ने मन्दिर में प्रवेश किया—केवल एक बार चुपचाप दोनों की ओर देख भर लिया।

राधा ने मङ्गल की ओर देखकर अविचलित भाव से कहा—तुम्हारे घर आऊँगी; तुम मेरी राह देखना।

सुखदेव मन्दिर से बाहर निकले। उन्होंने एक बार कठिन विचारक की तरह राधा की ओर देखा। राधा चुपचाप उनके पीछे चली। मङ्गल हक्का बक्का सा खड़ा रहा। जैसे उसे फाँसी का हुक्म हुआ हो।

(२)

उसी रात को सुखदेव ने एक हल्दी की रँगी पीली धोती लाकर राधा को दी और कहा—इसे पहनो।

राधा उसे पहन आई। उसके बाद हुक्म हुआ—मेरे साथ आओ।

सुखदेव के हुक्म को, इशारे को भी, कभी किसी ने नहीं टाला। राधा भी नहीं टाल सकती थी।

उस रात्रि के समय दोनों बहन भाई गङ्गातट की ओर चले। गङ्गातट गाँव के पास ही था। मसानघाट के पास ही गङ्गापुत्र के घर में एक वृद्ध ब्राह्मण जीवन की घड़ियाँ गिन रहा था। उसी के पलँग के पास जाकर सुखदेव खड़े हुए। उनके पीछे राधा भी थी। वहीं पोथी-पत्रा लिये एक पुरोहितजी भी मौजूद थे। सुखदेव ने उनको इशारा किया। पुरोहित पहले ही से इस शुभकार्य की तैयारी किये बैठे थे। वह उठ खड़े हुए। राधा को मालूम होगया कि इस मरने के लिए तैयार

बुड्ढे के साथ ही उसका ब्याह होगा। उसने कुछ भी आपत्ति नहीं की। पास ही जल रही दो चिताओं के प्रकाश में, उस अँधेरे घर में, इस तरह राधा का ब्याह होगया। एक ओर बुड्ढा मृत्यु की यन्त्रणा से कराह रहा था और दूसरी ओर पुरोहितजी विवाह के अशुद्ध और अस्पष्ट मन्त्र पढ़ रहे थे।

ब्याह के दूसरे ही दिन राधा विधवा होगई। इस दुर्घटना से विधवा राधा को कुछ बहुत शोक नहीं हुआ। और मङ्गल भी जैसे अकस्मात् राधा के ब्याह की ख़बर पाकर विस्मित और व्यथित हुआ था वैसे उस के विधवा होने की ख़बर से नहीं हुआ। बल्कि उसे इस ख़बर से कुछ सन्तोष सा हुआ। लेकिन वह सन्तोष का भाव अधिक देर तक नहीं टिक सका। दूसरे एक वज्रपात ने उसके हृदय को चूर चूर कर दिया। उसे ख़बर मिली कि आज मसान में भारी भीड़ है। राधा सती होगी।

पहले उसने सोचा कि साहब से जाकर सब हाल कहूँ और उनकी सहायता से राधा का सती होना रोक दूँ। लेकिन फिर ख़याल आया कि साहब तो सबेरे ही मोटर पर कानपुर स्टेशन चले गये होंगे। साहब ने मङ्गल से साथ चलने के लिए कहा था, लेकिन मङ्गल नहीं गया।

राधा ने उससे कहा है कि "मैं तुम्हारे घर आऊँगी; तुम मेरी राह देखना।" अब मङ्गल को यह आशा नहीं है कि वह राधा को अपनी स्त्री बना सकेगा, लेकिन तब भी यह अभि-लाषा अवश्य है कि कम से कम दूर से वह राधा को देखे और

उसे किसी तरह की सहायता पहुँचा सके। राधा के विधवा होने की ख़बर सुनते ही एक बार उसे यह भी ख़याल हुआ था कि क्या विधवा से ब्याह नहीं हो सकता? एक बार उसने कानपुर में खड़े होकर विधवा के ब्याह पर बहुत सी बातें सुनी थीं। फिर उसने सोचा कि राधा इस बात पर कभी राज़ी न होगी। लेकिन उसके कान के पास किसी ने जैसे फिर वे ही शब्द दुहरा दिये कि "मैं तुम्हारे घर आऊँगी; तुम मेरी राह देखना।"

ऐसे ही अवसर में राधा के सती होने की ख़बर पाकर वह जैसे पागल होगया। उसने मन में प्रतिज्ञा की कि या तो राधा को बचाऊँगा और या अपनी जान दे दूँगा। उसे यह विश्वास था कि राधा अपनी इच्छा से नहीं सती हो रही है।

शाम होने में कुछ ही कसर थी। बड़े ज़ोर से आँधी आई और मूसलधार पानी बरसने लगा। ऐसे ज़ोर से आँधी आई कि मङ्गल समझा, मकान सिर पर फट पड़ेगा। उसकी भीतरी प्रकृति की तरह जगत् की बाहरी प्रकृति ने भी एक महाविप्लव मचा रक्खा है, यह देखकर मङ्गल का चित्त कुछ शान्त हुआ। उसे जान पड़ा, सारी प्रकृति उसकी ओर से कुछ प्रतीकार करने में लगी हुई है। वह ख़ुद जितनी शक्ति का प्रयोग करना चाहता था, लेकिन कर नहीं सकता था, उतनी ही शक्ति का प्रयोग करके प्रकृति देवी आकाश पाताल एक कर रही है।

इसी समय बाहर से किसी ने ज़ोर से किवाड़ों में धक्का मारा। मङ्गल ने उठकर जल्दी से किवाड़े खोल दिये। घर के भीतर एक स्त्री घुस आई। उसका वस्त्र भीगा था और घूँघट से वह सारे मुख को लपेटे थी। मङ्गल ने उसी समय पहचान लिया कि वह राधा है।

उच्छ्वास-भरे स्वर में मङ्गल ने पूछा—राधा, तुम चिता पर से भाग आई हो?

राधा ने कहा—हाँ! मैंने तुमसे अङ्गीकार किया था कि मैं तुम्हारे घर आऊँगी। वही प्रतिज्ञा पूरी करने आई हूँ। लेकिन मङ्गल, मैं अब ठीक वही राधा नहीं हूँ। मेरा सब कुछ बदल गया है। अब बतलाओ, क्या तुम मुझे अपने घर में रख सकते हो? साथ ही तुमको यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम कभी मुझसे मुँह खोलने के लिए न कहोगे।

मङ्गल ने कहा—जो तुम कहोगी वही करूँगा, इसके लिए मैं तुम्हारे ही सिर की क़सम खाता हूँ।

राधा ने कहा—अच्छा तो अभी यहाँ से चलदो।

घर में जो कुछ था, सब वैसे ही छोड़कर उसी आँधी-पानी में राधा को लेकर मङ्गल चल दिया। ऐसी आँधी चल रही थी कि खड़ा होना कठिन था। आँधी के वेग से उड़ रही छोटी छोटी कंकड़ियाँ छर्रें की तरह लगती थीं। सिर पर कोई पेड़ न फट पड़े, इस ख़याल से मङ्गल ने मैदान की राह पकड़ी। हवा का वेग पीछे से आगे को ठेल रहा था। मानों वह विकट

आँधी दोनों को संसार से खींच कर प्रलय की ओर उड़ाये लिये जा रही थी ।

(३)

पाठकगण इस घटना को कोरी मनगढ़न्त या अलौकिक न समझें । जिस समय सतीदाह की प्रथा प्रबल हो गई थी और प्राय: हर एक विधवा का सती होना आवश्यक समझा जाने लगा था उस समय ऐसी घटनायें अक्सर हो जाती थीं । जिस पर 'सत' नहीं चढ़ा वह ज़बर्दस्ती कैसे अपने शरीर की आहुति दे सकती है ?

राधा के हाथ-पैर बाँधकर उसे चिता पर बिठाकर यथा-समय आग लगा दी गई । आग धायँ धायँ करके जल उठी । इसी समय भारी आँधी आई, और मूसलधार पानी बरसने लगा । जो लोग मुर्दे को जलाने आये थे वे लोग जल्दी से भागकर गङ्गापुत्र के घर में घुस रहे । तमाशा देखने जो लोग आये थे वे भी गाँव में अपने अपने घर भाग गये । पानी से चिता की आग बुझने में देर नहीं हुई । इसी बीच में राधा के हाथ का बन्धन जल चुका था । उसके दोनों हाथ खुल गये थे । जलने की असह्य यन्त्रणा से राधा ने चटपट चुपचाप पैरों का बन्धन खोल डाला । उसके बाद जली हुई धोती से किसी तरह अङ्ग ढककर नग्नप्राय राधा अपने घर आई । घर ख़ाली था; सुखदेव मसान में—गङ्गापुत्र के घर में—थे । राधा ने

दीपक जला कर दूसरा कपड़ा पहना। फिर शीशा लेकर अपना मुँह देखा। इसके बाद शीशे को ज़मीन पर पटक कर उसने जैसे कुछ सोचा। फिर घूँघट से मुँह बन्द कर के वह मङ्गल के घर गई। इसके बाद जो हुआ, सो पाठकों को मालूम ही है।

मङ्गल ने कानपुर में जाकर एक महाजन के यहाँ नौकरी कर ली और वहीं एक छोटा सा मकान किराये पर लेकर राधा के साथ रहने लगा। राधा इस समय मङ्गल के घर में थी, मगर मङ्गल को कुछ सुख न था। अधिक नहीं, दोनों के बीच में केवल एक घूँघट का अन्तर था। लेकिन वह घूँघट मृत्यु की तरह चिरस्थायी और मृत्यु से भी बढ़कर पीड़ा पहुँचानेवाला था। क्योंकि निराशा जो है वह मृत्यु-जनित वियोग-वेदना को कुछ समय में शिथिल कर देती है, लेकिन इस घूँघट से होने-वाले विछोह में एक सजीव आशा मङ्गल के हृदय को हर घड़ी पीड़ा पहुँचाती थी।

एक तो राधा में पहले ही से चुप्पी और गम्भीरता का भाव देख पड़ता था; उसके ऊपर इस घूँघट के पर्दे ने और भी सन्नाटा कर दिया। यह सन्नाटा मङ्गल को असह्य जान पड़ने लगा। उसे जान पड़ता था कि वह जैसे मृत्यु से घिरा हुआ है। यह चुप्पी और सन्नाटे की मृत्यु उसके जीवन से लिपट कर उसको नित्य प्रति जर्जर और क्षीण करने लगी। मङ्गल पहले जिस राधा को जानता था वह तो उसके हाथ से निकल ही गई। लेकिन मङ्गल

उसकी सुन्दर बाल्य-स्मृति को अपने हृदय में बनाये रखना चाहता था। घूँघट में मुँह छिपाये हुए यह राधा की भीषण मूर्ति सदा के लिए पास रहकर चुपचाप उसमें भी बाधा डालने लगी।

मङ्गल सोचता था कि सभी आदमियों में एक प्रकार का स्वाभाविक अन्तर देख पड़ता है। खासकर राधा उसी तरह अपने स्वभाव के चारों ओर एक तरह का आवरण लेकर पैदा हुई है जैसे कि कर्ण कवच पहने हुए ही पैदा हुए थे। वह राधा बीच में जैसे मर कर फिर पैदा हुई है और अब की बार उसके शरीर पर भी एक दूसरा आवरण पड़ गया है। रोज़ पास रह कर भी वह जैसे बहुत दूर चली गई है; मङ्गल उसे छू नहीं पाता। वह जैसे एक माया की रेखा के उस पार बैठ कर उत्सुकता के साथ इस सूक्ष्म किन्तु अटल रहस्य को समझने की चेष्टा कर रहा है। नक्षत्र-गण जैसे हरएक रात को निद्राहीन निमेषहीन नीची दृष्टि से अँधेरी रात का रहस्य जानने के लिए निष्फल चेष्टा करते हैं, वैसे, वही हाल मङ्गल का था।

इसी तरह ये दोनों प्राणी भिन्न भिन्न प्रकार के जीवन को लेकर बहुत दिनों तक एक ही जगह रहे।

एक दिन वर्षाऋतु में शुक्लपक्ष की दशमी की रात को बादल फट जाने से चन्द्रमा के दर्शन हुए। स्थिर चाँदनी रात सोई हुई पृथ्वी के सिरहाने बैठी सी थी। मङ्गल को भी नींद नहीं आई थी। वह भी प्रकृति की सब लीला देख रहा था।

कोठे पर से, खुली हुई खिड़की से, मङ्गल ने देखा, चन्द्रमा की चमक से गङ्गाजी की अपूर्व शोभा हो रही है। पास की एक बगिया से उच्छ्वास-पूर्ण जुही की सुगन्ध आरही थी। चारों ओर झींगुरों की झनकार सुनाई पड़ती थी। यह बतलाना कठिन है कि ऐसे समय मनुष्य स्पष्ट रूप से कोई बात सोच सकता है या नहीं। केवल यही कहा जा सकता है कि उसका हृदय किसी ओर ढुलने लगता है—फूलों की तरह उससे कोई उच्छ्वास-पूर्ण महक निकलती है और झींगुरों की ध्वनि की तरह उसका कातर क्रन्दन सुनाई पड़ता है। मालूम नहीं मङ्गल क्या बात सोच रहा था।

सोचते सोचते मङ्गल को जान पड़ा, आज जैसे पहले सब नियम तोड़ डाले गये हैं। आज बरसात की रात ने अपने मुँह पर से बादलों की नक़ाब उतार डाली है। उसे आज की रात पहले की राधा की तरह निस्तब्ध, सुन्दर और गंभीर जान पड़ी। उसकी सारी मनोवृत्तियाँ राधा की ओर दौड़ गईं।

मन्त्रमुग्ध की तरह मङ्गल वहाँ से उठा और जहाँ राधा लेटी हुई थी वहाँ पहुँचा। राधा उस समय सो रही थी।

मङ्गल पास जाकर खड़ा हो गया। सिर झुकाकर देखा, राधा के मुँह पर चाँदनी पड़ी हुई थी। किन्तु हाय, यह क्या! वह चिरपरिचित मुँह कहाँ है! चिता की आग ने अपनी निठुर लपलपाती हुई जीभ से उसके कुछ अंश को चाट लिया है और बाक़ी हिस्से को बिगाड़ डाला है।

जान पड़ता है, यह देख कर मङ्गल चौंक पड़ा था और शायद उसके मुँह से एक हलकी सी चीख़ भी निकल गई थी। राधा चौंक कर जाग उठी। उसने देखा, सामने मङ्गल खड़ा है। उसी घड़ी घूँघट काढ़ कर, पलँग छोड़ कर, वह एकदम खड़ी हो गई। मङ्गल समझ गया कि अब वज्रपात होने ही चाहता है। उसने पैरों पर गिर कर कहा—मुझे माफ़ करो।

राधा ने कुछ भी जवाब नहीं दिया और न फिर कर देखा। उसी समय घर से निकल कर चली गई। वह फिर मङ्गल के घर नहीं आई और न कहीं उसका पता लगा। उस क्षमाहीन नीरव क्रोध की आग ने जन्म भर के लिए मङ्गल के हृदय में एक दाग़ दे दिया।

भोलानाथ की मूर्खता ।

जो लोग कहते हैं कि विश्वनाथ की मृत्यु के समय उनकी दूसरी स्त्री भीतर बैठी हुई ताश खेल रही थी वे सारे संसार की निन्दा करना ही पसन्द करते हैं—तिल को ताड़ बना देते हैं। असल बात यह है कि वह उस समय, पैर पर पैर रक्खे, एकाग्रतापूर्वक हरे मिर्चे और मूली के साथ नमक और घी के सने भुने चने चबा रही थीं। इतने में उनकी पुकार हुई। चनों से शून्य बर्तन आगे से हटा उन्होंने बिगड़कर कहा—आग लगे ऐसी संगत में; दो चने मुँह में डालने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती !

इधर डाक्टर जब जवाब देगया तब विश्वनाथ के भाई भोलानाथ ने धीरे से कहा—"दादा, अगर आप वसीयतनामा लिखाना चाहते हों तो बतलाइए।" विश्वनाथ ने क्षीण स्वर में कहा—"मैं बोलता हूँ, तुम लिखो।" भोलानाथ काग़ज़ क़लम लेकर लिखने के लिए तैयार हुए। विश्वनाथ ने कहा—"मैं रुपया-पैसा और ज़मीन-मकान वग़ैरह अपनी सारी सम्पत्ति अपनी धर्मपत्नी यशोदा को देता हूँ।" भोलानाथ ने वही लिखा, लेकिन लिखते समय उनके हृदय के साथ हाथ की क़लम भी कई बार हिल गई। भोलानाथ को बड़ी आशा थी कि विश्वनाथ अपनी सम्पत्ति अपने भतीजे रामचरन को दे जायँगे। क्योंकि

उनके कोई लड़का-बाला नहीं है। यद्यपि विश्वनाथ और भोला-नाथ, दोनों जुदे होचुके थे, तथापि इसी आशा से रामचरन की मा ने बेटे को नौकरी नहीं करने दी। उन्होंने जल्दी से अपने लड़के का ब्याह भी कर डाला और—शत्रुओं की आँखों में राई-नोन भटकटैया के काँटे— ब्याह निष्फल भी नहीं गया। रामचरन एक बेटे का बाप बन चुका है। किन्तु, तो भी, भोलानाथ ने वही लिखा जो उनके भाई ने लिखाया। वसीयतनामा लिखकर दस्तख़त करने के लिए क़लम विश्वनाथ के हाथ में दी। विश्वनाथ ने निर्जीव हाथों से दस्तख़त क्या किये, कुछ टेढ़ी मेढ़ी लकीरें खींच दीं। उन्हें देखकर यह बतलाना कठिन था कि ये किसके हस्ताक्षर हैं।

चने चबाकर जिस समय यशोदा आई उस समय रोगी का बोल बन्द हो चुका था। यह देखकर यशोदा रोने लगीं। पहले से अनेक आशा करने पर भी समय पर जिन्हें विश्वनाथ की संपत्ति से एक पैसा नहीं मिला वे कहने लगे—"यह रोना-धोना सब बनावटी है।" लेकिन उनके इस कहने पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता।

वसीयतनामे का हाल सुनकर रामचरन की मा वहाँ दौड़ी आई और आते ही उसने चिल्ला चिल्लाकर कहना शुरू किया—"मरने के समय तो आदमी की अक्किल मारी ही जाती है। ऐसे भतीजे के रहते—"

भोलानाथ को यद्यपि अपनी स्त्री पर अत्यन्त श्रद्धा थी—

इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उसे भय भी कह सकते हैं—किन्तु तो भी उनसे रहा न गया। वह दौड़कर आये और बोले—रामू की मा, तुम तो अभी सठिया नहीं गई, फिर यह क्या पागलपन कर रही हो? दादा चले गये, लेकिन मैं तो बना हुआ हूँ। तुम को जो कुछ कहना हो वह मुझसे अकेले में कहना, यह ठीक समय नहीं है।

रामचरन मित्रमण्डली के अड्डे में बैठा तबला बजा रहा था। चाचा की बीमारी बढ़ने की खबर उसे दो तीन घंटे पहले मिली थी, लेकिन एक नई 'गत' का अभ्यास करना बहुत ज़रूरी था, इसीसे वह जब आया तब चाचा की मौत हो चुकी थी।

रामचरन को यह बात दरवाज़े पर आते ही मालूम हो गई कि वसीयतनामा लिखा जा चुका है और उसमें उसे एक पैसा नहीं दिया गया। आते ही मुर्दे को डाँटकर रामचरन ने कहा, "देखूँ मुँह कौन फूकता है—सराध कौन करता है? मैं कुछ न करूँगा।"

लेकिन विश्वनाथ यह कुछ मानते न थे। वह बहुत दिन कलकत्ते में रहे थे और डफ़ साहब के छात्र थे। शास्त्र के मत से जो चीज़ें सबसे बढ़कर अखाद्य हैं उन्हीं को वह ख़ास तौर पर खाते थे। किन्तु अगर कोई उन्हें ईसाई कहता था तो वह कहते थे—"हरे-हरे! अगर मैं ईसाई होऊँ तो...मांस खाऊँ!" ज़िन्दगी में जिसका यह हाल था मरने पर पिण्ड न

देने की या मुँह में आग न लगाने की धमकी से डर जाने की कुछ भी संभावना न थी। लेकिन उस समय मरे हुए चाचा से बदला चुकाने का और कोई साधन रामचरन के हाथ में न था। रामचरन को यह सोचकर धीरज हुआ कि उसका चाचा परलोक में जाकर भूखों मरेगा। उसने सोचा कि मैं तो चाचा की सम्पत्ति न पाकर भी किसी तरह अपना पेट भर लूँगा; लेकिन चाचा जिस लोक में गये हैं वहाँ भीख भी नहीं मिलती!

भोलानाथ ने अपनी विधवा भावज के पास जाकर कहा—"भौजी, दादा तुमको अपनी सारी सम्पत्ति दे गये हैं। यह वसीयतनामा है। इसे सुभीते से रखना।"

उनकी विधवा भावज उस समय ऊँचे स्वर से अनेक लम्बे लम्बे शब्द कहकर विलाप कर रही थी। उसके साथ ही दो चार और औरतें स्वर में स्वर मिलाकर अपने शोकसंगीत से गाँव के लोगों की नींद में बाधा डाल रही थीं। बीच में इस काग़ज़ के टुकड़े ने आकर विधवा को 'लय' से अलग कर दिया और भाव का भी पूर्वापर सम्बन्ध नहीं रहा। विलाप ने इस प्रकार असंलग्न रूप धारण किया:—

"अरे राम रे, मैं तो लुट गई, मेरा तो सत्यानाश होगया। अच्छा भोला, यह वसीयतनामा किसका लिखा है? तुम्हारा लिखा है? अरे राम रे, अब उस तरह कौन मुझे प्यार करेगा? (औरतों से) अरे ज़रा ठहर तो जाओ! मुनुआँ की अम्मा,

चिचिया न, बात सुनने दे। हाय रे, मैं ही क्यों न पहले मर गई, मैं क्यों जीती रही!"

एक लम्बी साँस लेकर भोलानाथ ने अपने मन में कहा—हम लोगों के अभाग्य से!

घर जाने पर रामचरन की मा भोलानाथ के पीछे पड़ गई। जैसे लदी हुई गाड़ी को लेकर गढ़े में गिरा हुआ अभागा बैल गाड़ीवान के हज़ारों घूसे डण्डे और गालियाँ खाकर भी, कोई उपाय न होने के कारण, वहीं चुपचाप खड़ा रहता है वैसे ही भोलानाथ भी बहुत देर तक चुपचाप सुनते और सहते रहे। अन्त को कातर स्वर से भोलानाथ ने कहा—"मेरी इसमें क्या लाग है! मैं तो दादा हूँ नहीं! फिर मुझसे क्यों बिगड़ रही हो?"

रामचरन की मा नागिन की ऐसी फुफकार मार कर खड़ी होगई और बोली—"तुम्हारा क्या लाभ है, तुम बड़े भलेमानुस हो। तुमको कुछ नहीं मालूम। दादा ने कहा लिखो और तुमने लिख डाला। तुम सब एक से हो! तुम भी मरने के समय ऐसा कर जाओगे। मेरे मरते ही किसी डाइन को ब्याह लाओगे और उसी के नाम सब लिखकर मेरे रामचरन को कंगाल कर जाओगे। मगर यह हो नहीं सकता, मैं जल्दी नहीं मरने की!

इस प्रकार भोलानाथ के भावी अत्याचार की आलोचना करके उनकी स्त्री का गर्जना उत्तरोत्तर अधिक होने लगा। भोलानाथ यह अच्छी तरह जानते थे कि इन सब उत्कट

कल्पित आशङ्काओं को दूर करने के उद्देश्य से अगर वह रत्ती भर भी प्रतिवाद करेंगे तो भलाई के बदले बुराई ही होगी। इसी भय से अपराधी की तरह बेचारे चुप रहे, मानों सब काम कर चुके हैं। जैसे रामचरन को कुछ न देकर अपनी दूसरी औरत के नाम सब लिखकर वह मर चुके हैं, अब अपराध स्वीकार करने के सिवा और कोई उपाय नहीं है।

इसी बीच में रामचरन ने अपने समझदार मित्रों की सलाह ले अपनी मा से आकर कहा—"कोई चिन्ता नहीं है। यह जायदाद मुझे ही मिलेगी। कुछ दिनों के लिए बाबू को यहाँ से हटा देना चाहिए। उनके रहने से सब मामला बिगड़ जायगा।" रामचरन की मा को अपने पति की मूर्खता के बारे में कुछ भी सन्देह न था, उसे भी लड़के की यह राय पसन्द आगई।

अन्त को रामचरन की मा ने ऐसा रङ्ग रचा कि लाचार होकर और इसी से अनावश्यक मूर्ख भोलानाथ को कुछ काल के लिए घर छोड़ देना पड़ा। उन्होंने काशी में जाकर एक दूकान में नौकरी करली।

भोलानाथ के जाते ही रामचरन और यशोदा ने परस्पर, एक दूसरे के ऊपर, जाली वसीयतनामा बनाने का मुक़द्दमा चलाया। रामचरन ने अदालत में जो अपने नाम का वसीयतनामा पेश किया उसमें सब जायदाद उसी के नाम लिखी थी और नीचे विश्वनाथ के स्पष्ट हस्ताक्षर थे। इसके अलावा उसकी

लिखा-पढ़ी के समय के दो-चार निःस्वार्थ गवाह भी जुट गये। यशोदा के गवाह केवल भोलानाथ हैं और यशोदावाले वसीयतनामे की 'सही'' भी स्पष्ट नहीं है। यशोदा के घर में एक उसका ममेरा भाई रहता था। उसने कहा—"दीदी, तुम चिन्ता न करो, मैं ख़ुद गवाही दूँगा, और और गवाह भी जुटाऊँगा।"

मामला जब अच्छी तरह चल चुका तब रामचरन की मा ने पतिदेवता के पास अपनी सख़्त बीमारी का तार भेजा। तार पाते ही अनुगत भले आदमी भोलानाथ स्त्री से आख़िरी मुलाक़ात करने की आशा से घर आये। मालूम नहीं, घर में घरवाली को रोग-शय्या के बदले मचिया पर बैठे भुने भुट्टे चाबते देख कर भोलानाथ को विस्मय हुआ या भय।

जिस समय भोलानाथ घर में आये उसी समय संयोगवश अदालत के चपरासी ने आकर आवाज़ दी। भोलानाथ ने देखा, अदालत से उनके नाम एक गवाही का सफ़ीना आया है। वह जिस समय सन्नाटे में आकर उस सफ़ीने को उलट पुलट कर उसका मतलब समझने की चेष्टा कर रहे थे उसी समय रामचरन की मा ने आकर रोना शुरू कर दिया। बोली—"वह डाइन मेरे बच्चे के चाचा की जायदाद तो हड़प करना चाहती ही है, उसके साथ ही वह कलमुँही राँड़ मेरे बच्चे को जेल भेजने की भी तैयारी कर रही है" इत्यादि।

अन्त को धीरे धीरे अनुमान से सब मामला जान लेने पर

भोलानाथ दंग रह गये । उन्होंने चिल्लाकर कहा—"तुमने यह क्या अनर्थ किया!" धीरे धीरे अपना असली रूप धारण कर के घरवाली ने कहा—क्यों, इसमें रामचरन ने क्या क़सूर किया? वह अपने चाचा की जायदाद छोड़ दे?

यह कौन कुलउजागर भतीजा सह सकता है कि न-जाने कहाँ से पति को खाजानेवाली चुड़ैल आकर चाचा की जमा पर क़ब्ज़ा करले और वह मुँह ताकता रहे? यदि मरने के समय किसी डाइन के फेर से बुड्ढे चाचा की मति बौरा गई हो तो उसके उस भ्रम या चूक को भतीजा क्या नहीं सुधार सकता? क्या यह भी कुछ अन्याय है?

चक्कर में पड़े हुए भोलानाथ ने जब देखा कि स्त्री और पुत्र दोनों कभी गर्जन-तर्जन और कभी अश्रु-विसर्जन कर रहे हैं तब वह माथा ठोक कर चुप होरहे । भोजन नहीं किया, जल तक नहीं पिया ।

इसी तरह भूखे-प्यासे रहकर दो दिन बिता दिये । मुक़द्दमे की पेशी का दिन आया । इसी बीच में रामचरन ने यशोदा के ममेरे भाई को भय और लालच दिखाकर ऐसा क़ाबू में कर लिया था कि उसने अनायास रामचरन के माफ़िक़ गवाही दी । यशोदा के हारने और रामचरन के जीतने में कुछ भी सन्देह नहीं रह गया । उसी समय भोलानाथ की पुकार हुई ।

भूखे-प्यासे होने के कारण मुर्दा होरहे भोलानाथ काँपते हुए हाथों से कटहरा पकड़ कर गवाही देने के लिए खड़े हुए।

उस समय उनकी ज़बान और ओठ सूख रहे थे। चतुर बैरिस्टर ने बड़े ही कौशल से असली बात कहला लेने के लिए जिरह करना शुरू किया। वह बहुत दूर से शुरू करके सावधानता के साथ अत्यन्त धीर वक्र गति से प्रसङ्ग के निकटवर्ती होने का उद्योग करने लगे।

तब भोलानाथ ने जज की ओर मुख़ातिब होकर हाथ जोड़ कर कहा—"हुज़ूर, मैं बूढ़ा और बहुत ही कमज़ोर हूँ। बहुत बोलने की मुझमें शक्ति नहीं। मुझे जो कहना है वह मैं संक्षेप में कहे देता हूँ। मेरे बड़े भाई स्वर्गीय विश्वनाथ दुबे मरते समय वसीयतनामा लिखा कर सब जायदाद अपनी औरत यशोदा को देगये हैं। वह वसीयतनामा ख़ुद मैंने अपने हाथ से लिखा है। भाई साहब ने उस पर अपने हाथ से सही की है। मेरे लड़के रामचरन ने जो वसीयतनामा दाख़िल किया है वह जाली है।" इतना कहकर काँपते काँपते भोलानाथ अचेत होगये।

चतुर बैरिस्टर ने दिल्लगी के तौर पर अपने पास खड़े हुए एक वकील से कहा—कैसा कबुलवा लिया?

ममेरे भाई ने दौड़कर पालकी में बैठी हुई अपनी बहन (यशोदा) से कहा—बुड्ढे (भोलानाथ) ने तो सब मिट्टी कर दिया था—मेरी गवाही से तुम्हारा मुक़द्दमा सँभल गया।

यशोदा ने कहा—हाँ? किसी के जी की कौन जान सकता है? मैं बुड्ढे को भला आदमी समझती थी।

हवालात में बन्द रामचरन के मित्रों ने बहुत सोच विचार कर यह निश्चय किया कि बुड्ढे ने डर के मारे यह काम किया है। गवाही के कटहरे में जाकर वह घबरा गया। ऐसा मूर्ख आदमी तो शहर भर में खोजने से भी नहीं मिल सकता।

अदालत से लौटकर घर पहुँचने पर भोलानाथ को बुखार आया। सरसाम होगया। प्रलाप में पुत्र का नाम लेते लेते वह मूर्ख, सब काम बिगाड़ने वाला, रामचरन का अनावश्यक बाप, पृथ्वी पर से उठ गया। स्वजनों में से किसी किसी ने कहा कि और कुछ दिन पहले ही मर जाते तो अच्छा होता।

परदेसी ।

मेरी पाँच बरस की लड़की मुन्नी घड़ी भर भी चुप नहीं रह सकती। पृथ्वी पर आने के बाद भाषा सीखने में उसे केवल एक साल लगा था। तब से वह जितनी देर तक जागती है, चुप नहीं रहती। उसकी मा तो अक्सर धमका कर उसे चुप कर देती है, लेकिन मुझसे ऐसा नहीं होता। मुन्नी का चुप रहना ऐसा अस्वाभाविक जान पड़ता है कि मुझे असह्य हो उठता है। इसी कारण मेरी उसकी बातचीत उत्साह के साथ बड़ी देर तक हुआ करती है।

एक दिन सबेरे मैंने अपने उपन्यास का सत्रहवाँ परिच्छेद लिखना शुरू किया था, इसी समय मुन्नी ने आकर कहा—"बाबूजी, सुबोध (मेरा नौकर, बंगाली छोकरा) कौए को काक कहता था, वह कुछ नहीं जानता! क्यों बाबूजी?"

मैं जब तक उसे यह समझाऊँ कि दुनिया में देश देश की जुदी जुदी बोलियाँ हैं, तब तक उसने दूसरा प्रसङ्ग छेड़ दिया। बोली—देखो बाबूजी, भोला कहता था कि अकास में हाथी अपनी सूड़ों से पानी बरसाते हैं। भोला ऐसी ही झूठी बातें बका करता है। जब देखो बक बक किया करता है, दिन-रात बकता है।"

इस बारे में मेरा मतामत सुनने की कुछ भी अपेक्षा न

करके एकाएक मुझसे पूछ बैठी—बाबूजी, अम्मा तुम्हारी कौन है ?

मन ही मन उसके इस प्रश्न पर हँसकर मैंने मुन्नी से कहा—मुन्नी, तू भोला के साथ जाकर खेल। मुझे इस वक्त काम करना है।

मुन्नी टेबिल के निकट मेरे पैरों के पास बैठकर एक विलायती सचित्र सूचीपत्र उलट पलट कर देखने लगी। मैंने सत्रहवाँ परिच्छेद लिखना शुरू किया। वहाँ पर का विषय यह था कि नायक प्रतापसिंह नायिका मनोरमा को लेकर अँधेरी रात में जेलखाने की ऊँची खिड़की से नीचे नदी में फाँदने को तैयार हैं।

मेरा घर सड़क के किनारे ही पर था। मुन्नी एकाएक सूचीपत्र के चित्र देखना छोड़ कर बरामदे में दौड़ी गई और "काबुली ओ काबुली" कह कर चिल्लाने लगी।

मैला-ढोला-मोटे कपड़े का कुर्ता पहने, साफ़ा बाँधे, कन्धे पर मेवे की झोली डाले, हाथ में दो चार अंगूर की पिटारी लिये, लम्बे डील-डौल का एक काबुली सड़क पर धीमी चाल से जा रहा था। मालूम नहीं, उसे देखकर मेरी मुन्नी के मन में किस प्रकार का भाव उत्पन्न हुआ। मुन्नी ने ज़ोर शोर से उसे पुकारना शुरू कर दिया। मैंने सोचा, मेरा सत्रहवाँ परिच्छेद पूरा होना कठिन है; अभी झोली कन्धे में डाले बला आकर हाज़िर होगी।

किन्तु मुन्नी के पुकारने से जैसे हँसमुख काबुली ने फिर कर देखा, वैसे ही मुन्नी का भाव कुछ बदल गया और उस काबुली को फाटक के भीतर आते देखकर तो वह जान लेकर भीतर भाग गई। मा के धमकाने के अनुसार मुन्नी का यह विश्वास था कि वह झोली के भीतर बन्द करके बच्चों को पकड़ ले जाता है।

इधर हँसमुख काबुली आकर मुझे सलाम करके खड़ा होगया। मैंने सोचा, यद्यपि इस समय प्रतापसिंह और मनोरमा सङ्कट में पड़े हुए हैं, तथापि पुकार कर बुलाये गये सौदे-वाले से कुछ न ख़रीदना भी अच्छा न होगा।

कुछ मेवा उससे ख़रीदा। उसी सिलसिले में कुछ इधर उधर की भी बातें हुईं। बातों बातों में काबुल, रूस और अँगरेज़ों का ज़िक्र छिड़ गया। सरहद की हिफ़ाज़त की पालिसी पर भी कुछ चर्चा हुई।

अन्त को उठकर जाते समय काबुली ने पूछा—बाबू तुम्हारी लड़की कहाँ गई?

मैंने मुन्नी के अकारण भय को दूर करने के इरादे से उसे भीतर से बुलवाया। वह बिलकुल मुझसे सटकर खड़ी हुई और बारम्बार काबुली के चेहरे और झोली की ओर सन्देह-भरी दृष्टि डालने लगी। काबुली अपनी झोली से किशमिश और खुब्बानी निकाल कर मुन्नी को देने लगा। मुन्नी किसी तरह लेने पर राज़ी नहीं हुई। उसका सन्देह और भी

बढ़ गया; मुझसे चिमट गई। उस परदेसी से पहला परिचय इस तरह हुआ।

कुछ दिन बाद एक दिन सबेरे मुझे कहीं जाने की ज़रूरत पड़ी। घर से निकलते समय मैंने देखा कि दरवाज़े के पास पड़ी हुई बेंच पर बैठी मुन्नी मौज से मनमानी बातें कह रही है और उसके पैरों के पास बैठा हुआ वही हँसमुख काबुली सुन रहा है। बीच बीच में वह भी अपनी राय ज़ाहिर करता जाता है। मुन्नी को इस पाँच वर्ष की अवस्था में मेरे सिवा ऐसे धैर्य के साथ उसकी बातें सुननेवाला दूसरा नहीं मिला। मैंने देखा, मुन्नी अपनी धोती के आँचल में ढेर से बादाम और किशमिश लिये हुए है। मैंने काबुली से कहा—"उसे यह सब क्यों दिया? अब न इस तरह देना।" यह कहकर मैंने जेब से निकाल कर एक अठन्नी उस काबुली को दी। काबुली ने बिना किसी संकोच के वह अठन्नी लेकर जेब में डाल ली।

काम से लौट कर घर आया। देखा, उस अठन्नी के कारण बड़ा गोलमाल मचा हुआ है।

मुन्नी की मा वह अठन्नी हाथ में लिये डाँटकर मुन्नी से पूछ रही हैं—तू ने यह अठन्नी कहाँ पाई?

मुन्नी कहती है—काबुली ने दी है।

उसकी मा ने और भी ज़ोर से डाँट कर कहा—काबुली से तूने अठन्नी क्यों ली?

मुन्नी ने आँखों में आँसू भर कर कहा—मैंने उससे माँगी नहीं—वह आपही देगया!

मैंने आकर मुन्नी को इस विपत्ति से बचाया और उसे लेकर बाहर चला आया।

मालूम हुआ, काबुली का यह दूसरा ही फेरा नहीं है। वह रोज़ आता है और पिस्ते-बादाम देकर उसने मुन्नी के कोमल हृदय पर बहुत कुछ अधिकार कर लिया है।

काबुली का नाम रहमत था। रहमत और मुन्नी की अवस्था में ज़मीन-आसमान का अन्तर था, तब भी दोनों का हृदय मिल गया। इन दोनों दोस्तों में कुछ प्रश्नोत्तर बँधे हुए थे। जैसे, रहमत को देखते ही मुन्नी हँसते हँसते पूछती थी—काबुली, ओ काबुली, तुम्हारी झोली के भीतर क्या है?

इसके उत्तर में रहमत एक अनावश्यक अर्द्धचन्द्र जोड़कर कहता था—हाँथी।

उसकी इस दिल्लगी का सूक्ष्म मर्म यही था कि उसकी झोली के भीतर एक हाथी है। यह दिल्लगी किसी सूक्ष्म रहस्य से भरी हुई न थी तो भी दोनों दोस्तों को इससे बड़ा आनन्द मिलता था। शरद ऋतु के प्रात:काल में एक बच्चे और एक सयाने-बच्चे के चेहरे पर सरल हँसी की रेखा मुझे भी बड़ी अच्छी लगती थी।

दो-एक बातें और भी ऐसी ही थीं। रहमत मुन्नी से कहता था—मुन्नी, तुम ससुराल जाओगी?

मुन्नी नहीं जानती थी कि ससुराल किसे कहते हैं। लेकिन किसी बात का कुछ जवाब न देकर चुप रहना मुन्नी के स्वभाव के विरुद्ध बात थी। वह उलट कर रहमत से पूछती थी—तुम ससुराल जाओगे ?

रहमत अपने कल्पित ससुर के लिए घूँसा तान कर कहता था—मैं ससुर को मारूँगा।

यह सुनकर, ससुर नाम के किसी अपरिचित जीव की दुर्गति का अनुमान करके, मुन्नी ख़ूब हँसती थी।

इन दिनों साफ़ शरद ऋतु है। प्राचीन काल में राजा लोग इसी समय दिग्विजय के लिए यात्रा करते थे। मेरा जन्म कलकत्ते में ही हुआ है। मेरे बाबा युक्तप्रान्त से यहाँ रोज़गार करने आये थे। मैं कलकत्ता छोड़कर, दूकान छोड़कर, कभी कहीं नहीं गया। लेकिन इसी कारण मेरा मन सदा पृथ्वी-मण्डल भर में घूमा करता है। किसी देश का नाम सुनते ही मेरा मन कल्पना के सहारे वहाँ दौड़ जाता है। मैं एक स्वतन्त्र रोज़गार करके भी बन्धन में था। दूकान की देख-रेख रखने वाला कोई दूसरा आदमी न था। इसके सिवा किसी पर पूरा विश्वास करना भी मेरे स्वभाव के विरुद्ध था।

इसके अलावा कलकत्ते में भी मैं कभी घूमने न जाता था। दूकान घर से मिली हुई थी। सवेरे मैं अपने कमरे के बरामदे में कुर्सी डाल कर बैठता था और घण्टों उस काबुली से बातें हुआ करती थीं। काबुली के वर्णन से मेरे आगे उसके देश

का चित्र सा अंकित हो जाता था। दोनों ओर हरेरी से शून्य दुर्गम ऊँचे पहाड़, बीच में तङ्ग घाटी, लदे हुए ऊँटों की क़तारें, ऊँटों पर और पैदल जा रहे साफ़ा बाँधे हुए सौदागरों और मुसाफ़िरों के झुंड इत्यादि दृश्य जैसे आँखों के आगे आ जाते थे।

मुन्नी की मा के स्वभाव में शङ्का की मात्रा कुछ अधिक थी। सड़क पर ज़रा गुल सुन पड़ते ही उन्हें जान पड़ता था कि शहर भर के सब पागल और मतवाले उन्हीं के घर में घुसने के लिए आरहे हैं। इस पृथ्वी पर इतने दिनों (बहुत अधिक दिन नहीं) से रहने पर भी यह ख़ौफ़ उनके मन से दूर नहीं हुआ कि पृथ्वी भर पर सब जगह चोर-डकैत मतवाले साँप बाघ आदि भरे पड़े हैं।

रहमत काबुली की ओर से भी वह निश्चिन्त न थीं। उस पर ख़ास नज़र रखने के लिए वह मुझसे कई बार कह चुकी हैं। मैंने जब उनके सन्देह को हँसी में उड़ा देने की चेष्टा की तब उन्होंने एक-दम सिलसिलेवार कई प्रश्न करके मुझे चुप करा दिया। यथा—"क्या कभी किसी का लड़का चुराया नहीं गया? काबुल में क्या ग़ुलाम नहीं बिकते? एक लम्बा तड़ङ्गा काबुली क्या छोटी सी लड़की को चुराकर—फुसला कर—नहीं ले जा सकता?"

मुझे यह मानना ही पड़ा कि ऐसा होना असंभव नहीं है; किन्तु विश्वास करने के योग्य नहीं है। विश्वास करने

की शक्ति सबकी समान नहीं होती, इसी से मेरी स्त्री का ख़ौफ़ दूर नहीं हुआ। लेकिन उसके लिए बिना किसी अपराध के रहमत को घर न आने देने का इरादा मैं न कर सका।

हर साल माघ के महीने में रहमत अपने देश को चला जाता है। इस समय अपना लहना वसूल करने में उसे बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। वह मेवा बेचता है, महाजनी करता है, और उधार कपड़ा भी देता है। आज-कल उसे घर घर तगादा करने जाना पड़ता है, तो भी एक बार वह मुन्नी से ज़रूर मुलाक़ात कर जाता है। जिस दिन सबेरे नहीं आ सकता उस दिन शाम को आता है। किसी किसी दिन अन्धकार में ढीलाढाला पाजामा और कुर्ता पहने, कन्धे में झोली डाले—लंबे-तड़ङ्गे रहमत को देखकर सचमुच हृदय के भीतर एक खटका सा पैदा होजाता है।

किन्तु जब देखता हूँ कि "काबुली, ओ काबुली" कहकर हँसती हुई मुन्नी दौड़ी आती है और दोनों जुदी जुदी अवस्था वाले दोस्तों में सरल स्वभाव की हँसी-दिल्लगी होने लगती है तब मेरा हृदय प्रसन्न हो उठता है।

मुझे कुछ साहित्य-सेवा का भी शौक़ था। कुछ न कुछ लिखता ही रहता था। मेरी एक नई पुस्तक छप रही थी। एक दिन मैं बैठा हुआ उसी का फ़ाइनल प्रूफ़ देख रहा था। जाने के पहले आज दो तीन दिन से जाड़ा ख़ूब कड़ा पड़ रहा है, सब अङ्ग जैसे गले जा रहे हैं। खिड़की होकर सबेरे की धूप टेबिल

के नीचे मेरे पैर के ऊपर पड़ रही है, उस धूप की गर्मी बहुत भली मालूम पड़ती है। शायद आठ बजे होंगे। गले में गुलूबन्द लपेटे हवा खाने के लिए निकले हुए लोग अपने अपने घर लौटे जा रहे थे। इसी समय रास्ते में बड़ा गुलगपाड़ा सुन पड़ा।

खड़े होकर देखा, रहमत को दो सिपाही बाँधे हुए लिये आरहे हैं, पीछे बहुत से लड़कों और राहगीरों का झुण्ड चला आ रहा है। रहमत के कुर्त्ते में ख़ून के दाग़ थे, और एक सिपाही के हाथ में ख़ून से तर छुरी थी। मैंने जल्दी से फाटक के बाहर जाकर सिपाहियों को रोक कर पूछा—क्या मामला है ?

कुछ सिपाहियों से और कुछ रहमत से सुनकर मैंने जाना कि मेरे परोसी एक चपरासी ने रहमत से एक लोई ली थी। उसके कुछ दाम उस पर बाक़ी थे। वह अब दाम देने से मुकरता है। इसी पर झगड़ा होते होते रहमत को ग़ुस्सा चढ़ आया और उसने चपरासी के एक छुरी मारदो है।

रहमत उस झूठे बेईमान चपरासी को सैकड़ों बुरी गालियाँ दे रहा था, इसी बीच में "काबुली, ओ काबुली" पुकारती हुई मुन्नो वहाँ पर आकर उपस्थित हुई।

रहमत का चेहरा दम भर के लिए ख़ुशी से खिल उठा। आज रहमत के कन्धे पर झोली न थी, इस कारण उसके बारे में कोई बातचीत हो न सकी। मुन्नो ने आते ही उससे पूछा—तुम सुसराल जाओगे ?

रहमत ने हँसकर कहा --वहीं जाता हूँ ।

रहमत ने देखा, इस उत्तर से मुन्नी को हँसी न आई, तब उसने घूँसा दिखा कर कहा—सुसरे को मारता, लेकिन क्या करूँ, हाथ बँधे हैं ।

मांघातिक चोट पहुँचाने के अपराध में रहमत को सात साल की सज़ा हो गई ।

उसका ख़याल बिलकुल जाता रहा । हम लोग जिस समय अपने घर में बैठे नित्य के अभ्यास के अनुसार सब काम-काज करते थे उस समय, एक स्वाधीन पहाड़ी आदमी जेलख़ाने की दुर्भेद्य दीवार के भीतर किस तरह सज़ा के दिन काटता होगा, यह ख़याल भी हमें न होता था ।

और मुन्नी ? वह भी उसे भूल गई । उसने पुराने दोस्त को भुला कर नबी साईस से दोस्ती कर ली । इसके बाद ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ने लगी त्यों त्यों मित्रों के बदले सखियाँ जुटने लगीं । यहाँ तक कि अब वह मेरे लिखने-पढ़ने के कमरे में भी नहीं देख पड़ती । मैंने तो आज-कल एक तरह से खुट्टी कर ली है ।

अब मुन्नी की अवस्था तेरह वर्ष की है । इस साल उसके ब्याह का पक्का प्रबन्ध होगया है । एक सुशील लड़का कलकत्ते में ही मिल गया है । अगहन में ब्याह होगा ।

धीरे धीरे अगहन आगया । आज ही ब्याह का दिन है । आज का प्रातःकाल बहुत ही सुहावना जान पड़ा । न्यौते में

आये हुए लोगों से घर भरा हुआ है। चारों ओर उत्साह और आनन्द की छटा छाई हुई है। मैं अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में बैठ कर हिसाब-किताब देखने लगा। इसी समय रहमत ने आकर मुझे सलाम किया।

पहले मैं उसे पहचान नहीं सका। न उसके कन्धे में झोली है, न सिर पर लम्बे लम्बे बाल हैं और न शरीर में पहले का ऐसा तेज ही है। अन्त को उसकी हँसी से मैंने पहचाना।

मैंने कहा—क्यों रहमत, कब आया?

उसने कहा—कल शाम को जेल से छूटा हूँ।

उसका यह उत्तर मेरे कानों में जैसे खटक गया। मैंने किसी ख़ूनी को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा; उसे देख कर मेरा हृदय जैसे संकुचित होगया। मुझे यह मालूम पड़ा कि आज इसका यहाँ से चला जाना ही अच्छा होगा।

मैंने उससे कहा—आज मेरे यहाँ एक काम है, मैं उसमें फँसा हुआ हूँ। आज तुम जाओ।

मेरी यह उक्ति सुनकर वह लौट पड़ा। लेकिन बरामदे से नीचे उतरने के पहले ही फिर कर उसने संकोच के साथ कहा—बाबूजी, मुन्नी कहाँ है?

शायद उसका यह विश्वास था कि मुन्नी उतनी ही बड़ी होगी। वह शायद समझता था कि मुन्नी पहले की तरह "काबुली, ओ काबुली" कहती दौड़ी आवेगी और उन दोनों के उस पुराने प्रश्नोत्तर में कुछ भी अन्तर न पड़ेगा। वह मुन्नी

के लिए दो तीन अंगूर की पिटारी और एक पुड़िया में किश-मिश-बादाम वगैरह, किसी स्वदेशी मित्र से माँगकर, लेता आया था ।

मैंने कहा—आज घर में काम है; मुन्नी से भी मुलाक़ात नहीं हो सकती ।

उसे जैसे कुछ बुरा मालूम हुआ । उसने सन्नाटे में आकर स्थिर दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखा । उसके बाद "बाबू सलाम" कहकर वह चल दिया ।

मेरे हृदय में जैसे एक तरह की चोट लगी । इच्छा हुई, उसे बुला लूँ । इतने में देखा कि वह ख़ुद लौटा आ रहा है ।

पास आकर उसने कहा—ये अंगूर और कुछ किशमिश-बादाम मुन्नी के लिए लाया था; उसे दे दीजिएगा ।

मैं उन्हें लेकर दाम देने के लिए तैयार हुआ । तब उसने जैसे जोश में आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—आपकी मेहर्बानी को मैं कभी नहीं भूल सकता । मुझे दाम न दीजिए । बाबू, तुम्हारे जैसे एक लड़की है वैसे ही मेरे भी एक लड़की है । मेरी लड़की और आप की लड़की का चेहरा और डील-डौल कुछ कुछ मिलता जुलता है । इसी से मुझे आपकी मुन्नी से मोहब्बत होगई है और मैं कभी कभी उस के लिए मेवा ले आता हूँ ।

इतना कह कर उसने कुर्त्ते के भीतर से—न जाने कहाँ-

से—एक मैले कागज़ की पुड़िया निकाली । बड़े यत्न से पुड़िया खोल कर उसने मेरे टेबिल के ऊपर रख दी ।

मैंने देखा, कागज़ के ऊपर एक छोटे हाथ की छाप बनी हुई है । फ़ोटो नहीं है, तैल-चित्र नहीं है, हाथ में थोड़ी सी राख लगा कर उसी की निशानी ले ली गई है । लड़की के इस स्मरण-चिह्न को छाती से लगा कर रहमत हर साल इतनी दूर से कलकत्ते में मेवा बेचने आता था । वह सुकोमल हाथ का चिह्न उसके हृदय को वियोग की व्यथा से बचाये रखता था ।

देख कर मेरी आँखों में आँसू भर आये । उस समय मैं यह भूल गया कि वह काबुली मेवावाला है और मैं एक प्रतिष्ठित अगरवाला बनिया हूँ । मैंने समझा, जो मैं हूँ वही वह है । मैं भी पिता हूँ, वह भी पिता है । उसकी उस पर्वत-वासिनी पहाड़ी लड़की के स्मृति-चिह्न ने मुझको मुन्नी की याद दिला दी । आज ही मुन्नी पराई हो जायगी ।

मैंने उसी दम मुन्नी को भीतर से बुलवाया । इस पर औरतों ने बहुत कुछ आपत्ति की । पर मैंने एक न सुनी । अच्छे गहने और कपड़े पहने मुन्नी आकर लज्जा के मारे मेरे पास खड़ी हो गई ।

उसे देखते ही वह काबुली सकपका गया । पहले जैसी वह सरल बातचीत न कर सका । उसके बाद हँस कर उसने कहा—मुन्नी, तू सुसराल जायगी ?

अब मुन्नी सुसराल के माने समझती है । इस समय वह

पहले का ऐसा जवाब न दे सकी। रहमत के इस प्रश्न से लज्जा के मारे उसका मुँह लाल हो आया और उसने मुँह फेर लिया। जिस दिन पहले पहल काबुली से और मुन्नी से जान-पहचान हुई थी उस दिन की बात मुझे याद आगई। हृदय में एक प्रकार की व्यथा होने लगी।

मुन्नो के चले जाने पर एक गहरी लम्बी साँस लेकर रहमत ज़मीन पर बैठ गया। उसे एकाएक स्पष्ट रूप से यह मालूम होगया कि उसकी लड़की भी इतने दिनों में ऐसी ही बड़ी होगई होगी। उससे भी नये ढँग से बातचीत करनी पड़ेगी। वह ठीक पहले के रूप में न देखने को मिलेगी। इसके सिवा सात बरस से उसे नहीं देखा। वह जीती हो या न हो।

मैंने अपना बक्स खोल कर एक पचास रुपये का नोट निकाला और रहमत को देकर कहा—रहमत, तुम अपनी जन्मभूमि में जाकर अपनी लड़की को देखो और दुआ दो कि मेरी मुन्नी सुख से रहे।

यह रुपया दे देने के कारण मुझे कुछ रोशनी और कुछ दावत का सामान कम कर देना पड़ा, लेकिन उस परदेसी की प्रसन्नता ने इस शुभ उत्सव को मङ्गल के प्रकाश से उज्ज्वल बना दिया।

पद्मा ।

(१)

बुद्धूलाल ने बहुत ही ख़फ़ा होकर अपने बाप से आकर कहा—मैं जाता हूँ !

बाप विहारीलाल ने कहा—तू एहसानफ़रामोश है। लड़कपन से जो तूने खाया-पिया पहना-ओढ़ा है, उसका बदला चुकाना तो दूर रहा, ऊपर से आँखें दिखाता है।

विहारीलाल के घर में खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने की जैसी परिपाटी है उसे देखकर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि लड़के को खिलाने पिलाने आदि में कुछ बहुत ख़र्च न हुआ होगा। प्राचीनकाल के ऋषि लोग बहुत ही साधारण सामान से अपनी ज़िन्दगी बिताते थे। विहारीलाल की रहन-सहन देख कर जान पड़ता था कि खाने-पीने और पहनने ओढ़ने के बारे में उनका भी वैसा ही उच्च आदर्श है। परन्तु वह ऋषियों की तरह सम्पूर्ण सिद्धि नहीं प्राप्त कर सके। लेकिन इसके लिए आधुनिक समाज को ही दोष दिया जा सकता है।

लड़के का जब तक व्याह नहीं हुआ तब तक वह सब सहता रहा। व्याह होने के बाद खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने

के बारे में बाप का ढंग बेटे को पसन्द नहीं रहा । बढ़िया बूट, रेशमी कोट, सोने की कमानी की ऐनक, घड़ी. छड़ी इत्यादि इत्यादि सामान ख़रीदा जाने लगा ।

इस बात के लिए कभी कभी बाप और बेटे में कहा-सुनी भी हो जाती थी । इसी बीच में बुद्धू की बीबी बहुत बीमार हो गई । वैद्यजी ने आकर बीस रुपये का एक नुस्ख़ा लिखा । इतने ही से वैद्य की मूर्खता का परिचय पाकर विहारीलाल ने उसे बिदा कर दिया । बुद्धू पहले बाप के पैरों पर गिर पड़ा, उसके बाद लड़ा-झगड़ा, लेकिन कुछ फल न हुआ । औरत के मर जाने पर उसने बाप के मुँह पर उसे 'हत्यारा' कह दिया ।

बाप ने कहा—क्यों, दवा खा कर क्या कोई नहीं मरता? अगर क़ीमती दवा खाकर ही मौत टल जाती तो फिर रईस, राजा और बादशाह क्यों मरते? जैसे तेरी मा मरी, तेरी बहन मरी, वैसे ही तेरी जोड़ू भी मर गई ।

सचमुच अगर बुद्धू शोक से अधीर न हो कर विचार करके देखता तो पिता की इस बात से बहुत कुछ सन्तोष हो जाता । उसकी मा या बहन किसी ने मरते दम तक दवा नहीं खाई । इस घर की यही सनातन चाल है । लेकिन इस ज़माने के लोग पुराने ढंग पर मरना भी नहीं पसन्द करते । जब की बात लिखी जा रही है तब वैसेही इस देश में अँगरेज़ आये थे । उस समय के पुराने लोग तत्कालीन नव्य-सम्प्रदाय का हाल देखकर दाँतों-उँगली दबाते थे ।

उस समय के नवयुवक बुद्धू ने बुड्ढे बाप से बिगड़ कर कहा—मैं जाता हूँ।

बाप ने उसी समय बेटे को जाने के लिए अनुमति देदी और सबके आगे कहा—मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि बुद्धू को कभी एक पैसा भी अपनी जायदाद से न दूँगा। बेटे ने भी कहा—मैं भी अगर विहारीलाल से एक पैसा माँगूँ तो मुझे माता की हत्या का पाप लगे।

बहुत दिनों तक शान्ति रहने के बाद इस छोटे से उपद्रव के हो जाने से गाँव के लोगों में एक प्रकार की स्फूर्ति देख पड़ी। बुद्धू जब से बाप से सब सम्बन्ध छोड़कर चला गया तब से सभी लोग अपनी अपनी शक्ति के अनुसार विहारीलाल के पुत्र-वियोग-दुःख को दूर करने की चेष्टा में लग गये। सभी ने कहा—केवल एक स्त्री के लिए बाप से लड़ना-झगड़ना बड़ी ही नीचता और घोर कलिकाल का लक्षण है!

ऐसा कहनेवालों ने यह एक प्रबल युक्ति भी दिखलाई कि "एक स्त्री मर जाने पर दूसरी स्त्री शीघ्र ही मिल सकती है, लेकिन बाप तो दूसरा सिर पटकने पर भी नहीं मिल सकता।" युक्ति तो बहुत ही सुन्दर है, लेकिन मुझे विश्वास है कि अगर बुद्धू इस युक्ति को सुनता तो वह पछताने के बदले ख़ुश ही होता।

बुद्धू के जाने से विहारीलाल को कुछ भी दुःख नहीं हुआ। उसके जाने से एक तो ख़र्च घट गया, दूसरे एक बड़ा भारी भय भी जाता रहा। उसे बुद्धू की ओर से खटका था

कि कहीं वह कुछ खिलाकर मार न डाले । जो कुछ वह थोड़ा बहुत खाता था उसके साथ विष की कल्पना मिली रहती थी । बहू के मरने पर यह खटका कुछ कम हो गया था । अब पुत्र के चले जाने पर बुड्ढा एक प्रकार से निश्चिन्त होगया ।

सिर्फ़ एक दुख हुआ । बुद्धू के एक चार बरस का लड़का नन्दू (नन्दकुमार) था । उसे बुद्धू अपने साथ लेगया । बालक नन्दू का ख़र्च कम था । इसी से बुड्ढा उसे सच्चे दिल से प्यार करता था । तथापि जब बुद्धू उसे ले ही गया तब, उस शोक में भी, बुड्ढे ने एक बार यह हिसाब करके अपने मन को समझाने की चेष्टा की कि दोनों के चले जाने से महीने में इतना, और साल में इतना रुपया बचेगा और उसका सूद हर महीने इतना मिलेगा ।

किन्तु तो भी सूने घर में, नन्दू का उपद्रव न होने से, रहना कठिन हो गया । आज-कल पूजा में कोई विघ्न नहीं डालता, रसोई कोई जूठी नहीं करता, लिखने की दावात कोई चुरा नहीं रखता । बिना किसी उपद्रव के नहाना-खाना होजाने से बुड्ढे का चित्त व्याकुल हो उठता था ।

बुड्ढे को मालूम पड़ा कि मरने के बाद ही ऐसी उत्पात-शून्य शान्ति मिलती है । ख़ास कर बिछाने की दरी में नन्दू के किये छेद और रामायण के पत्रों में उक्त कारीगर के बनाये स्याही के बेल-बूटे देखकर बिहारीलाल की व्याकुलता और बढ़ जाती थी । उत्पाती नन्दू ने दो ही साल में धोती पहनने लायक़ नहीं रक्खी थी और इसके लिए बिहारीलाल ने उसे

बहुत डाँटा था। इस समय दालान में बालक की उस मैली और सौ जगह से सिली हुई धोती को देखकर बुड्ढे की आँखों में आँसू भर आये। उस धोती को पलीता बनाने आदि किसी गिरिस्ती के काम में न लगाकर बुड्ढे ने सन्दूक के भीतर उठाकर रख दिया और अपने मन में कहा कि अगर नन्दू लौट आवे और साल में एक धोती भी पहन डाले तो मैं उसे कुछ न कहूँगा।

लेकिन नन्दू नहीं लौटा। बिहारीलाल जैसे बड़ी फुर्ती के साथ बुड्ढा होने लगा। घर के साथ ही उसे अपना हृदय भी अत्यन्त शून्य जान पड़ने लगा।

घर में बुड्ढे की तबीयत न लगती थी। दोपहर को, जिस समय लोग आराम करते हैं, वह गाँव के महल्लों में घूमा करता था। उस गाँव के एक कवि ने बिहारीलाल की कम-खर्ची पर कुछ छन्द बनाये थे। दोपहर को जब बुड्ढा घूमने निकलता था तब खेल रहे लड़के उसे देखकर दूर भाग जाते और ऊँचे स्वर से उन्हीं छन्दों की आवृत्तियाँ किया करते थे। बुड्ढे का असली नाम लेने का किसी को साहस न होता था। लोग डरते थे कि इस मनहूस का नाम लेंगे तो उस दिन खाने को न मिलेगा। इसी लिए लोगों ने उसके नये नये नाम रख लिये थे। बड़े लोग उसे 'कुबेर' कहते थे। लेकिन लड़के न जाने क्यों उसे 'चिमगादड़' कहते थे। जान पड़ता है, बुड्ढे का रक्तहीन शिथिल चमड़ा चिमगादड़ के शरीर से मिलता जुलता था।

(२)

एक दिन इसी तरह दोपहर के समय आम के पेड़ों की छाया से शीतल अपने बाग़ में बुड्ढा टहल रहा था। उसने देखा कि एक अपरिचित बालक, गाँव के लड़कों का मुखिया बनकर, उन्हें बिलकुल नये ढङ्ग के उपद्रव सुझा रहा है। गाँव के और सब लड़के उसकी तेज़ी और सूझ-बूझ देख कर उसका कहना करने के लिए ख़ुशी से तैयार हैं।

और बालक जैसे बुड्ढे को देखकर खेल छोड़कर इधर-उधर भाग जाते थे वैसे वह बालक नहीं भागा। उसने चटपट बुड्ढे के पास आकर अपनी धोती का दूसरा सिरा झाड़ दिया। एक बन्धनमुक्त गिरगिट धोती के सिरे से उछल कर बुड्ढे के सिर पर गिरा और वहाँ से सीधा जङ्गल की ओर चला गया। एकाएक डर जाने के कारण बुड्ढे के रोएँ खड़े हो आये। लड़के ख़ुशी के मारे खिलखिलाकर हँस पड़े। वैसे ही आनन-फ़ानन में बुड्ढे के कन्धे से उसका अँगोछा ग़ायब होगया। बुड्ढे ने फिर कर देखा, वही अपरिचित बालक उस अँगोछे की पगड़ी बाँधे हुए है।

उस अज्ञात बालक से ऐसे नये ढंग के शिष्टाचार को पाकर बुड्ढा उस पर बहुत ख़ुश हुआ। बहुत दिनों से किसी बालक ने बुड्ढे से ऐसा बेतकल्लुफ़ाना वर्ताव नहीं किया था। बहुत पुकारने, पुचकारने और आश्वास देने से वह लड़का बुड्ढे के पास आया।

बुड्ढे ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

लड़के ने कहा—गोकुल ।

बुड्ढा—घर कहाँ है ?

लड़का—यह न बताऊँगा ।

बुड्ढा—बाप का क्या नाम है ?

लड़का—यह भी न बताऊँगा ।

बुड्ढा—क्यों न बताओगे ?

लड़का—मैं घर छोड़कर भाग आया हूँ ।

बुड्ढा—क्यों ?

लड़का—मेरा बाप मुझे मदर्से में भेजना चाहता है ।

बुड्ढे ने अपने मन में कहा, ऐसे लड़के को स्कूल में भेजना निस्सन्देह एक भारी अपव्यय और लड़के के बाप की बेवक़ूफ़ी का पूरा परिचय है ।

बुड्ढे ने कहा—मेरे घर में रहोगे ?

लड़के ने कहा—हाँ ।

लड़का बिना किसी संकोच के इस तरह बुड्ढे के घर में रहने लगा, मानों वह उसके बाप का घर है ।

केवल यही नहीं, अपने खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने के बारे में इस तरह हुकूमत चलाने लगा, जैसे उन चीज़ों के दाम पहले ही चुका चुका है । इस बात के लिए कभी कभी वह बुड्ढे से झगड़ता और मचलता भी था । अपने लड़के को दबा लेना सहज था, पराये लड़के से विहारीलाल को भी हार माननी पड़ी ।

(३)

विहारीलाल के यहाँ गोकुल का ऐसा अत्यन्त आदर देख कर गाँव के लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। सबको निश्चय होगया कि यह बुड्ढा बहुत दिन नहीं जिएगा, और इस ग़ैर के लड़के को अपनी सब दौलत दे जायगा।

लड़के पर सबको डाह हुआ और सभी ने उसकी बुराई करने का इरादा कर लिया। लेकिन बुड्ढा सदा उस लड़के को कलेजे से लगाये रखता था।

बीच बीच में गोकुल बुड्ढे को चले जाने की धमकी दिया करता था। बुड्ढा उसे अपनी सारी जायदाद का लालच दिखाता था। कहता था—भैया, अपनी सारी जायदाद मैं तुझे ही दे जाऊँगा।

तब गाँव के लोग मिलकर उस लड़के के बाप का पता लगाने लगे। गाँववालों ने बड़ी ही हमदर्दी के भाव से कहा—हाय हाय, इसके मा-बाप तड़प रहे होंगे! लड़का भी बड़ा मुरहा है!

यों कह कर गाँव के लोग प्रायः गोकुल को गालियाँ दिया करते थे। शायद उनकी इस खीझ में न्याय-बुद्धि की अपेक्षा स्वार्थ ही की मात्रा अधिक थी।

बुड्ढे ने एक दिन एक आदमी से सुना कि रघुनाथ नाम का एक आदमी इधर आस-पास के गाँव में अपने खोये हुए

लड़के का पता लगा रहा है। शायद आज इस गाँव में भी आवेगा।

यह ख़बर सुनते ही गोकुल व्याकुल हो उठा। सारी जायदाद का लालच छोड़ कर भागने के लिए तैयार हुआ।

बुड्ढे ने गोकुल को बहुत कुछ ढाढ़स देकर कहा—तुझे मैं ऐसी जगह छिपा दूँगा जहाँ कोई भी न जान सकेगा। गाँव के आदमी भी नहीं।

बालक को यह बड़े ही तमाशे की बात जान पड़ी। उसने कहा—कहाँ? दिखलाओ।

बुड्ढे ने कहा—इस समय वहाँ चलने से सब लोग जान जायँगे। रात को चलेंगे।

बालक इस नई दिल्लगी को देखने के लिए बहुत ही उत्कण्ठित हो उठा। उसने मन में सोचा, बाप जब पता न पाकर चला जायगा तब चड्ढी बदकर लड़कों से लुकीलुकैया खेलूँगा और वहीं जाकर छिपूँगा। कोई न ढूँढ़ पावेगा। बड़ी दिल्लगी होगी। बाप आकर कहीं भी उसका पता न पावेगा, यह भी कम दिल्लगी न होगी!

दोपहर के समय बालक को घर में बन्द करके बुड्ढा कहीं चला गया। उसके लौट आने पर मारे सवालों के बालक ने उसका नाक में दम कर दिया।

शाम भी नहीं होने पाई, बोला—चलो।

बुड्ढे ने कहा—अभी रात नहीं हुई।

गोकुल ने फिर कहा—रात होगई दादा, अब चलो ।

बुड्ढे ने कहा—अभी गाँव के लोग सोये नहीं ।

गोकुल ने फिर दम भर के बाद कहा—अब सोगये होंगे, चलो ।

रात ज्यादा बीत गई । गोकुल को नींद आ गई । वह जी-जान से अपने को नींद से बचाने की कोशिश करता रहा; तब भी बैठे ही बैठे ऊँघने लगा । आधी रात के समय गोकुल का हाथ पकड़ कर बुड्ढा गाँव की गली में निकला । कोई शब्द नहीं था । दो-तीन कुत्ते एकाएक भूँक उठे । दूर पर के और कुत्तों ने भी उनका साथ दिया । बीच बीच में रात को घूमनेवाले पक्षी पैरों की आहट से डर कर इस पेड़ से उस पेड़ पर उड़ जाते थे । डर के मारे बालक ने बुड्ढे का हाथ और भी मज़बूती से पकड़ लिया ।

खेतों का मैदान नाँघ कर बुड्ढा ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ कुछ दूर तक पेड़ों और कँटीली झाड़ियों का झुरमुट था । वहीं एक टूटे फूटे मन्दिर के पास पहुँच कर बुड्ढा खड़ा होगया । मन्दिर में मूर्ति नहीं थी ।

गोकुल ने डर की आवाज़ में कहा—यहीं ?

उसने जो कुछ सोचा था उसके लायक़ तो यह जगह नहीं है । यहाँ वैसी दिल्लगी की कोई जगह नहीं है । बाप का घर छोड़ने के बाद उस बालक को अक्सर ऐसे टूटे मन्दिरों में सोकर रात बितानी पड़ी है ।

बुड्ढे ने मन्दिर के भीतर जाकर एक पत्थर उठाया। बालक ने देखा, नीचे एक कोठरी है और उसमें दीपक जल रहा है। देख कर एक साथ ही विस्मय, कौतूहल और भय हुआ। सीढ़ी लगी थी, बुड्ढा नीचे उतर गया। गोकुल भी डरते डरते उसके पीछे उतरा।

नीचे जाकर देखा, चारों ओर पीतल के कलसे रक्खे हैं। बीच में एक आसन है और उसके सामने चन्दन, फूल-माला आदि पूजा की सामग्री रक्खी है। बालक ने कौतूहल-वश एक घड़े का मुँह खोलकर देखा, उसमें रुपये और अशर्फ़ियाँ भरी थीं।

बुड्ढे ने कहा—गोकुल, मैंने कहा था कि अपना सब रुपया तुझे दूँगा। मेरे पास बहुत दौलत नहीं है। केवल ये दस बीस घड़े रुपयों और अशर्फ़ियों के हैं। आज मैं यह सब दौलत तुमको दूँगा।

बालक उछल पड़ा और बोला—सब? इसमें से एक भी रुपया तुम न लोगे?

बुड्ढा—नहीं। लेकिन एक बात है। अगर कभी मेरा खोया हुआ पोता नन्दकुमार, या उसका लड़का, पोता, पर-पोता, अथवा उसके वंश का कोई आवे तो तुमको यह दौलत उसे दे देनी होगी।

बालक ने समझा, बुड्ढा पागल होगया है। उसने स्वीकार कर लिया। कहा—अच्छा।

बुड्ढा—तो इस आसन पर बैठो ।

बालक—क्यों ?

बुड्ढा—तुम्हारी पूजा होगी ।

बालक—क्यों ?

बुड्ढा—ऐसा ही क़ायदा है ।

बालक आसन पर बैठ गया । बुड्ढे ने उसके चन्दन का तिलक लगाया । उस पर सेंदुर का टीका दिया । गले में माला पहनाई । उसके बाद सामने बैठकर बुड्ढे ने कुछ पढ़ा ।

इस तरह पूजा करवाने में बालक को भय मालूम पड़ा । उसने पुकारा—दादा !

कुछ जवाब न देकर बुड्ढा बुदुर बुदुर कुछ पढ़ता ही रहा ।

अन्त को एक एक घड़ा बड़े कष्ट से खिसका कर बुड्ढा उस बालक के आगे रखने लगा । हर घड़ा देते समय बुड्ढा बालक से कहला लेता था कि "पृथ्वीपति चौबे, उनके पुत्र माखन चौबे, उनके पुत्र लक्ष्मण चौबे, उनके पुत्र संपत चौबे, उनके पुत्र बिहारीलाल चौबे, उनके पुत्र बुद्धू चौबे, उनके पुत्र नन्दू चौबे, उनके लड़के, पोते, परपोते या उनके वंश के किसी भी उचित उत्तराधिकारी को मैं यह रुपया गिन दूँगा ।"

इस तरह बार बार कहते कहते लड़का जैसे चकरा गया । उसकी ज़बान अकड़ने लगी । जिस समय यह अनुष्ठान पूरा हुआ उस समय दीपक के धुएँ और दोनों के मुँह की भाफ़

से वह छोटा गढ़ा भर उठा। बालक का तालू सूखने लगा, हाथ-पैर में जलन होने लगी, साँस रुँधने लगी।

दीपक धीमा होते होते एक-दम बुझ गया। अन्धकार में बालक को जान पड़ा, बुड्ढा सीढ़ो पर होकर ऊपर जा रहा है।

व्याकुल होकर उसने कहा—दादा, कहाँ जाते हो?

बुंड्ढे ने ऊपर से कहा—मैं जाता हूँ। तुम यहाँ रहो—तुमको कोई ढूँढ़ नहीं सकता। लेकिन याद रखना, विहारी-लाल का पोता और बुद्धू का लड़का नन्दकुमार उर्फ़ नन्दू।

यह कह कर बुड्ढे ने सीढ़ो ऊपर उठा ली। बालक की साँस रुँध रही थी। उसने बड़े कष्ट से कहा—दादा, मैं बप्पा के पास जाऊँगा!

बुड्ढे ने उस पर ध्यान न देकर पत्थर को फिर उसी जगह पर रख दिया और कान लगाकर सुना, गोकुल ने और एक बार अस्पष्ट स्वर में कहा—दादा!

उसके बाद धम से गिरने का शब्द सुन पड़ा। फिर कुछ शब्द नहीं हुआ।

इस तरह यज्ञ के हाथ में अपनी जमा सौंपकर वह बुड्ढा उस पत्थर के ऊपर मिट्टी छोड़ने लगा। मिट्टी के ऊपर टूटे मन्दिर के ईंटों का ढेर लगा दिया। उसके ऊपर घास वग़ैरह डाल दी। रात बहुत थोड़ी रह गई, लेकिन बुड्ढा वहाँ से हट कर जा न सका। रह रह कर ज़मीन में कान लगाकर सुनता था कि वह बालक चिल्लाता तो नहीं है। उसे जान पड़ने लगा

कि बहुत दूर से, पृथ्वी की तह से, एक रोने की आवाज़ आ रही है। जान पड़ा, जैसे रात्रि के समय का निस्तब्ध आकाश उसी शब्द से परिपूर्ण हो रहा है। सारी पृथ्वी के लोग उस शब्द से जग उठे हैं और अपने अपने पलँग पर बैठे कान लगाये उसी शब्द को सुन रहे हैं।

वृद्ध घबरा कर मिट्टी के ऊपर मिट्टी डालता जाता था। मानों इसी तरह वह पृथ्वी के मुख को बन्द करना चाहता था। लेकिन फिर भी उसका शङ्कित हृदय सुन पाता था कि कोई 'दादा!' कहकर पुकार रहा है।

बुड्ढे ने मिट्टी पर हाथ पटक कर कहा—चुप, सब लोग सुन लेंगे।

फिर जैसे किसी ने पुकारा—दादा!

बुड्ढे ने देखा, धूप निकल आई है। डर के मारे वहाँ से निकल कर बुड्ढा मैदान में आया।

वहाँ भी किसी ने पुकारा—दादा!

बुड्ढे ने चौंक कर, फिरकर, देखा—बुद्धू आ रहा है।

बुद्धू ने कहा—दादा, पता लगाने से मालूम पड़ा कि मेरा लड़का तुम्हारे पास छिपा हुआ है।

बुड्ढे ने चौंक कर कहा—तेरा लड़का?

बुद्धू ने कहा—हाँ, नन्दू—इस समय वह गोकुल के नाम से प्रसिद्ध है और मैंने अपना नाम रघुनाथ रख लिया है। इधर आस पास सब जगह के लोग आपको जानते हैं; इसी से लज्जा के मारे हमने नाम बदल लिया है।

वृद्ध दोनों हाथ फैलाकर, मानों शून्य आकाश को पकड़ने की चेष्टा करता हुआ, पृथ्वी पर गिर पड़ा।

होश आने पर बुड्ढा अपने बेटे को उस मन्दिर के पास घसीट लेगया और बोला—रोने की आवाज़ सुन पड़ती है ?

बुद्धू ने कहा—नहीं।

बुड्ढे ने कहा—कान लगा कर सुन, कोई दादा कहकर पुकार रहा है ?

बुद्धू ने कहा—नहीं।

बुड्ढा जैसे निश्चिन्त होगया। तब से बुड्ढा पागल की तरह सबसे पूछता फिरता था कि "रोने की आवाज़ सुन पड़ती है ?" उसकी यह पागलपन की बात सुनकर सब लोग हँसते थे।

इस घटना के चार पाँच वर्ष बाद बुड्ढे के मरने का समय उपस्थित हुआ। आँखों के आगे से जगत् का सारा प्रकाश हटने लगा, साँस रुँध आई, तब सन्निपात के वेग से बुड्ढा उठ बैठा। दोनों हाथों से इधर उधर टटोल कर बुड्ढे ने कहा—गोकुल, मेरी सीढ़ी कौन उठा ले गया ?

उस वायुहीन, प्रकाशहीन भारी गढ़े से ऊपर उठने की सीढ़ी न पाकर बुड्ढा बिछौने पर धम से गिर पड़ा। संसार की लुकीलुकैया में जहाँ छिपे हुए को कोई नहीं ढूँढ़ पाता वहीं वह बुड्ढा चल दिया।

अन्तर।

नाता जोड़ कर देखने से मुन्नू और महेश दोनों ममेरे-फुफेरे भाई ठहरते हैं, सो भी बहुत कुछ बुद्धि ख़र्च करने पर। किन्तु इन दोनों के बाप-दादे बहुत दिनों से एकही जगह रहते हैं। दोनों घरों के बीच केवल एक छोटे से बाग़ का अन्तर है। इसी कारण निकट का नाता न होने पर भी दोनों घरानों में—ख़ास कर उक्त दोनों युवकों में—बड़ा हेल मेल है।

मुन्नू महेश से सात आठ वर्ष बड़ा है। महेश के जब दाँत नहीं निकले थे और वह बात नहीं कर सकता था तब मुन्नू ने उसे गोद में लेकर सुबह और शाम बाग़ में हवा खिलाई है, खिलाया है, चुप किया है, सुलाया है। इसके सिवा बच्चों के मनोरञ्जन के लिए सयाने लोगों को ज़ोर से सिर हिलाना, ऊँचे स्वर से बक बक करना आदि जितनी चपलता और उत्कट उद्यम दिखाना पड़ता है उसे दिखाने में मुन्नू ने भी कोई कसर नहीं उठा रक्खी।

मुन्नू ने बहुत लिखा-पढ़ा नहीं। उसे बाग़ लगाने का शौक़ था और उसका साथी यही दूर के नाते का छोटा भाई (महेश) था। वह छोटे भाई को दुर्लभ बहुमूल्य पौधे की तरह हृदय में स्थान देकर स्नेह से सींच रहा था। जब पौधे की तरह मुन्नू के

भीतर और बाहर व्याप्त होकर महेश बढ़ने लगा तब मुन्नू के आनन्द की सीमा नहीं रही।

साधारणत: ऐसा देखा नहीं जाता, लेकिन एक प्रकार की ऐसी 'प्रकृति' होती है जो किसी छोटे विचार, छोटे बच्चे या कृतघ्न मित्र को पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर देती है। ऐसी प्रकृति के लोग इस विशाल विश्व में आकर किसी एक छोटे स्नेह के कारबार में जिन्दगी की सारी पूँजी लगाकर निश्चिन्त रहते हैं; उसके बाद या तो मामूली नफ़े में ही बड़े सन्तोष से जीवन बिता देते हैं और या सब गँवा कर कंगाल की तरह राह राह मारे मारे फिरते हैं।

महेश जब और बड़ा हुआ तब मुन्नू की अवस्था अधिक और नाता बड़ा होने पर भी दोनों में मित्रता होगई। दोनों जैसे हमजोली के मित्र हों।

ऐसा होने का एक कारण भी था। महेश लिखता-पढ़ता था और स्वभाव से ही ज्ञानोपार्जन की ओर उसकी विशेष रुचि थी। जो किताब मिलती थी, उसे पढ़ डालता था। बहुत सी व्यर्थ पुस्तकें भी पढ़ी थीं; लेकिन चाहे जिस तरह हो उसकी सूझ बूझ अच्छी हो गई थी। मुन्नू बड़ी श्रद्धा से महेश की बातें सुनता था, उससे सलाह लेता था, उसके साथ छोटी बड़ी सब बातों की आलोचना करता था। किसी बात में बालक समझ कर उसकी उपेक्षा न करता था। हृदय का सारा स्नेह खर्च करके जिसे पाला-पोसा और बड़ा किया है वह अगर

समय पाकर विद्या, बुद्धि, ज्ञान और उन्नत-स्वभाव के कारण श्रद्धा का पात्र बने तो उससे बढ़ कर प्यारी चीज़ और क्या होगी ?

महेश को भी बाग़ का शौक़ था। किन्तु इसमें भी दोनों का ढङ्ग अलग अलग था। मुन्नू को था दिल का शौक़, और महेश को था अक़्ल का शौक़। पृथ्वी पर के ये पेड़ और लतायें जो सेवा की कोई लालसा नहीं रखते—किन्तु सेवा पाने से घर के लड़कों की तरह बढ़ उठते हैं, उन्हें यत्नपूर्वक पालने-पोसने और बड़ा करने की ओर मुन्नू की स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। किन्तु महेश उनको कौतूहल की दृष्टि से देखता था। अंकुर निकलते हैं, पत्ते निकलते हैं, कलियाँ लगती हैं, फूल खिलते हैं। इन सब बातों को देखने में महेश का ख़ूब जी लगता था।

पेड़ के बीज बोने, क़लम लगाने, खाद देने, थाले बाँधने आदि के बारे में महेश को तरह तरह की बातें सूझती थीं। मुन्नू उसकी सलाह को ख़ुशी के साथ मान लेता था। दोनों मिलकर सब तरह से उस बाग़ की सजावट और सुधार करने में लगे हुए थे।

दरवाज़े के पास बाग़ के नुक्कड़ पर एक पक्का चबूतरा सा बना था। चार बजे मुन्नू अपना फ़र्शी हुक्का लेकर उसी के ऊपर जा बैठता। बैठे बैठे तमाखू पीता था और उदासीन भाव से कभी इधर और कभी उधर देखता था। हुक्के के धुएँ की तरह उसका समय भी धीरे धीरे देखते ही देखते बीत जाता था।

जब महेश स्कूल से आकर वहाँ उपस्थित होता था तब हुक्का हटा कर मुन्नू खड़ा होजाता था। उस समय उसका उत्साह और एकाग्रता देखकर जान पड़ता था कि वह अब तक धैर्य के साथ बैठा महेश के आने की ही राह देख रहा था।

उसके बाद दोनों मित्र बाग़ में टहल टहल कर बातचीत करते थे। शाम को कुछ अँधेरा हो जाने पर, दोनों बेंच पर बैठते थे। कभी मृदु-मन्द-शीतल हवा के झोंकों से वृक्षों के पत्ते नाचते देख पड़ते थे, और कभी हवा न चलने के कारण चित्र-दृश्य के समान स्थिर रह कर मन को प्रसन्न करते थे। सिर के ऊपर आकाश में तारागण चमका करते थे।

महेश बातें करता था; मुन्नू चुपचाप सुनता था। जो कुछ समझ में न आता था, वह भी अच्छा लगता था। जो बातें औरों के मुँह से अच्छी नहीं लगतीं वे ही बातें महेश के मुँह से उसे बहुत ही रुचती थीं। ऐसा श्रद्धावान सयाना श्रोता पाकर महेश की व्याख्या-शक्ति, स्मृतिशक्ति और कल्पनाशक्ति जैसे उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। वह कुछ पढ़ी हुई, कुछ सोची हुई और कुछ उसी समय सूझी हुई बातें कहता था। और अक्सर जानकारी की कमी को कल्पना की सहायता से छिपा लेता था। महेश बहुत सी ठीक बातें और कुछ भ्रान्त बातें भी कहता था। मुन्नू सभी बातों को ध्यान देकर गम्भीर भाव से सुनता था, बीच बीच में दो एक बातें भी कहता था। किन्तु उन सन्देहों को दूर करने के लिए महेश जो कुछ सम-

झाता था वही मुन्नू के निकट वेदवाक्य हो जाता था। उसके दूसरे दिन दरवाज़े के चबूतरे पर छाँह में बैठ कर हुक़ा पीते पीते मुन्नू उन्हीं बातों पर ग़ौर करता था।

इसी बीच में एक दुर्घटना हो गई। मुन्नू के बाग़ और महेश के घर के बीच में एक नाला था। उस नाले की ज़मीन में एक आम का सूखा पेड़ था। मुन्नू के यहाँ का एक नौकर उसकी लकड़ी लेने गया। महेश के यहाँ के एक नौकर ने उसे रोका। दोनों नौकरों में ख़ूब गाली-गलौज हुआ। उन गालियों में अगर कुछ सारांश होता तो अवश्य ही उनसे वह नाला भर जाता।

मुन्नू के बाप देवीदीन और महेश के बाप दीनानाथ में मुक़दमेबाज़ी शुरू हो गई। उस नाले पर दोनों का दावा था।

आस-पास के शहरों के जितने बड़े बड़े वकील-बैरिस्टर थे वे किसी न किसी ओर से खड़े होकर लम्बे चौड़े लेकचरों के द्वारा अपने अपने पक्ष का समर्थन करने लगे। दोनों पक्षों का जितना रुपया ख़र्च हुआ उतना पानी सावन-भादों में भी कभी उस नाले से होकर नहीं बहा।

अन्त को देवीदीन की जीत हुई। साबित हो गया कि नाला उन्हीं का है और उस आम के पेड़ पर भी उन्हीं का अधिकार है। अपील हुई, लेकिन फ़ैसला पहला ही बहाल रहा।

जब तक मुक़द्दमा चलता रहा तब तक मुन्नू और महेश की मित्रता में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। यहाँ तक कि इस झगड़े

की काली छाया कहीं हमारे हृदयों में भी न पड़े, इस आशङ्का से मुन्नू और भी अधिक स्नेह से महेश को अपने निकट रखने की चेष्टा करने लगा। महेश ने भी कभी विमुख-भाव नहीं प्रकट किया।

जिस दिन अदालत में देवीदीन की जीत हुई उस दिन उनके घर में—खास कर जनाने में—बड़ी धूम धाम हुई। लेकिन मुन्नू को कुछ न अच्छा लगता था। वह रात उसने तड़प तड़प कर काटी। उसके दूसरे दिन, तीसरे पहर चार बजे, मुन्नू उसी चबूतरे पर जाकर बैठा। उसका चेहरा ऐसा मुरझाया हुआ था मानों उसने कोई बड़ा बुरा काम कर डाला है—मानों किसी बड़े भारी मुक़द्दमे में उसी की हार हुई है।

वह दिन भी बीत चला मगर महेश नहीं आया। मुन्नू ने एक लम्बी साँस लेकर महेश के घर की ओर देखा। कमरे का दर्वाज़ा खुला हुआ था; खूँटी पर महेश के स्कूल जाने के कपड़े टँगे हैं। और भी अनेक चिर-परिचित लक्षणों से मुन्नू को मालूम होगया कि महेश घर ही में है। हुक़्क़ा हटाकर मुन्नू वहीं टहलने लगा। उसने हज़ार बार उस कमरे की ओर देखा लेकिन महेश बाग़ में नहीं आया।

शाम को चिराग़ जलने पर मुन्नू धीरे धीरे महेश के घर गया।

दीनानाथ दरवाज़े पर बैठे हुए ठण्डी हवा से कलेजा ठण्डा कर रहे थे। उन्होंने पुकारा—कौन है?

मुन्नू चौंक उठा। जैसे वह चोरी करने आया था और पकड़ लिया गया है।

उसने काँपते हुए स्वर में कहा—मामा, मैं हूँ।

मामा ने कहा—किसकी खोज में आये हो, घर में कोई नहीं है।

मुन्नू फिर बाग़ में आकर चुपचाप बैठ रहा।

रात हो जाने पर एक एक करके महेश के घर के सब दरवाज़े बन्द हो गये। कमरे के दरवाज़ों की दराज़ों से जो भीतर का प्रकाश देख पड़ता था वह भी बुझ गया। अँधेरी रात में मुन्नू को मालूम पड़ा, महेश के घर के सब दरवाज़े केवल उसी के लिए बन्द हो गये। बाहर के अन्धकार में केवल वही अकेला पड़ा रह गया।

फिर दूसरे दिन उसी तरह मुन्नू आकर चबूतरे पर बैठा। सोचा, शायद आज महेश आवेगा। वह किसी तरह यह नहीं मान सका कि जो बहुत दिनों से रोज़ आता था वह एक दिन भी न आवेगा। मुन्नू ने कभी नहीं सोचा कि यह स्नेह का बन्धन इतना खोटा निकलेगा। इस ओर से वह ऐसा निश्चिन्त था कि उसे ख़बर भी न थी कि उसके जीवन का सारा सुख-दुख कब इस बन्धन में बँध गया। आज सहसा उसे मालूम हुआ कि वह बन्धन शिथिल हो गया। किन्तु इस पर वह किसी तरह विश्वास न कर सका कि वह बन्धन बिलकुल टूट ही गया है।

वह इसी तरह नित्य इस आशा से उसी चबूतरे पर जाकर बैठता था कि शायद दैव-संयोग से आज महेश आजाय । लेकिन वह ऐसा अभागा निकला कि जो नित्य आता था वह भूलकर भी उधर न निकला ।

मुन्नू ने सोचा कि रविवार को पहले की तरह सबेरे ही महेश आवेगा । यद्यपि उसे इस पर विश्वास न था, मगर फिर भी आशा को वह न छोड़ सका । सबेरा हुआ, लेकिन महेश न आया ।

मुन्नू ने सोचा, भोजन करके आवेगा । लेकिन वह बेला भी बीत गई । मुन्नू ने सोचा, खाकर सो गया होगा; नींद खुलने पर आवेगा । नींद खुलने का हाल मालूम नहीं कि कब खुली, लेकिन दिन भर बीत जाने पर भी महेश न आया ।

फिर शाम हुई । रात आई । महेश के घर का सदर दर-वाज़ा बन्द हो गया । कमरे की रोशनी बुझ गई । पर महेश न आया ।

इसी तरह सोमवार से रविवार तक सप्ताह के सातों दिन गुज़र गये, आशा को आश्रय देने के लिए एक भी दिन बाक़ी नहीं रहा । तब, यह 'अन्तर' पड़ जाने से, मुन्नू को जो दुःख हुआ उसे व्यक्त करते हुए एक लम्बी साँस लेकर, महेश के घर की ओर देखकर उसने कहा—हे दयामय !

———

श्यामा ।

श्यामा के साथ एक ही स्कूल में कुछ दिनों मैंने पढ़ा है और 'दुलहिन–दुलहा' भी खेला है। श्यामा के घर में जाता था तो उसकी मा बड़े प्यार से मुझे बिठलाती थी। हम दोनों को एक साथ खेलते देखकर श्यामा की मा बहुत ख़ुश होती थी। कभी कभी यह भी कह उठती थी, 'क्या अच्छी जोड़ी है !'

मैं छोटा ही था, लेकिन एक तरह से श्यामा की मा के मन का भाव समझ लेता था। इस धारणा ने मेरे मन में जड़ जमा ली थी कि श्यामा पर और लोगों की अपेक्षा मेरा कुछ अधिक दावा है। मैं इस दावे के घमण्ड में कभी कभी श्यामा के ऊपर शासन और हुकूमत भी करता था। श्यामा भी सब्र के साथ मेरे सब उपद्रव सहती और मेरी आज्ञा का पालन करती थी। महल्ले में सब लोग श्यामा के रूप की तारीफ़ करते थे लेकिन मैं उजड्ड बालक था; मेरी दृष्टि में उस सौन्दर्य का कुछ गौरव न था। मैं जानता था कि श्यामा मेरा ही प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए अपने बाप के घर पैदा हुई है और इसी कारण वह विशेष रूप से अनादर-पात्र है।

मेरे पिता ज़मींदार के यहाँ ख़ज़ानची थे। उनकी इच्छा थी कि लिखने में हाथ पक्का हो जाने पर ज़मींदारी के सरिश्ते का काम सिखाकर मुझे गुमाश्तों में नौकर रखा दें। लेकिन

मैं मन ही मन इसे नापसन्द करता था। मेरे परोस का लड़का कामता स्कूल में अँगरेज़ी पढ़ लिखकर कलेक्टर साहब का नाज़िर हो गया है। मेरा भी वैसा ही उच्च लक्ष्य था। मैंने अपने मन में यह निश्चय कर रक्खा था कि शायद कलेक्टर का नाज़िर न हो सका तो जजी का हेडक्लर्क अवश्य हो जाऊँगा।

मैं सदा देखता था कि मेरे पिताजी अदालत के नाज़िरों, हेडक्लर्कों आदि की बड़ी इज़्ज़त करते थे। लड़कपन से यह भी मैं देखता था कि अक्सर तरकारी-भाजी, फल-मूल, रुपये-पैसे आदि से उनका सत्कार किया जाता था। यहाँ तक कि अदालत के अर्दलियों के ऊपर भी मुझे विशेष श्रद्धा थी। ये हमारे हिन्दुस्तान के पूज्य देवता हैं। तैंतीस करोड़ देवतों के छोटे छोटे नये एडीशन हैं। विषय-सम्पत्ति से सम्बन्ध रखनेवाली सिद्धि के अनुष्ठान में सिद्धिदाता गणेश की तरह ये पहले पूजा पाते हैं।

मैंने देखा, कामता की तरह अँगरेज़ी पढ़ने का यहाँ मौक़ा नहीं है। मैंने कामता से बढ़कर काम करने का इरादा किया। छोटे शहर से एक-दम बड़े शहर को भाग गया—फ़तेहपुर से इलाहाबाद पहुँचा। पहले अपने शहर के एक विद्यार्थी के डेरे पर ठहरा। घर से कुछ रुपये ले गया था। ख़र्च की तंगी न थी। उसके बाद पिताजी ख़र्च भेजने लगे। यथाविधि मैं अँगरेज़ी पढ़ने लगा।

सभा-सोसाइटियों में भी मैं शामिल होने लगा। इस बारे में

मुझे कुछ भी सन्देह न था कि देश के लिए जान दे देना हर एक देशवासी का कर्तव्य है। लेकिन यह मैं न जानता था कि किस तरह यह कठिन काम किया जा सकता है। इसका एक कारण यह भी था कि कहने के सिवा कोई करके दिखाता न था।

लेकिन इस कारण उत्साह में कोई कमी न थी। हम छोटे शहर के लड़के बड़े शहरों के लड़कों की तरह सभी चीज़ों को हँस डालना सीखे न थे। इसी कारण हमारी निष्ठा अत्यन्त दृढ़ थी। हमारी स्वदेशी सभा के विद्वान् मेम्बर लेक्चर देते थे। हम लोग भूखे-प्यासे दोपहर के घाम में नोटिस बाँटते फिरते थे, सभा के स्थान में कुर्सियाँ और बेंचें बिछाते थे, और अगर कोई हमारे व्याख्यान-दाताओं को कुछ कहता था तो हम लोग कमर कस कर लड़ने को तैयार हो जाते थे।

नाज़िर या हेडक्लर्क होने आया था, लेकिन मेज़िनी और गेरीबाल्डो होने की तैयारी करने लगा।

इसी समय मेरे पिता श्यामा के पिता से सलाह करके मेरे ब्याह का प्रबन्ध करने लगे।

मैं पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इलाहाबाद भाग आया था। उस समय श्यामा आठ वर्ष की थी। इस समय मैं अठारह वर्ष का था। पिताजी की समझ से मेरी ब्याह की अवस्था बीती जाती थी। लेकिन इधर मैं यह प्रतिज्ञा कर चुका था कि ज़िन्दगी भर ब्याह न करके अपने देश को अपना जीवन अर्पण

कर दूँगा । पर पिता से कह दिया कि पढ़ना-लिखना समाप्त किये बिना मैं ब्याह न करूँगा ।

दो चार महीने के बाद मुझे ख़बर मिली कि एक वकील के साथ श्यामा का ब्याह हो गया । उस समय मैं भारतोद्धार के लिए चन्दा वसूल करने में लगा था; यह ख़बर बहुत ही साधारण जान पड़ी ।

एन्ट्रेन्स पास हो गया । एफ़० ए० में भर्ती हुआ । इसी समय पिता की मृत्यु हो गई । परिवार में केवल मैं ही अकेला न था, माता और दो बहनें भी थीं । लाचार कालेज छोड़ कर मुझे नौकरी की तलाश करनी पड़ी । बहुत चेष्टा करने पर काशी के एक हाई स्कूल में सेकिंड मास्टर हो गया ।

मैंने अपने मन में कहा, मेरे लायक़ ही काम मिला है । उपदेश और उत्साह देकर हर एक विद्यार्थी को ऐसा बनाऊँगा कि वह नेता बनकर देशोद्धार का बीड़ा उठावे ।

काम शुरू कर दिया । मैंने देखा, परीक्षा के लिए लड़कों को तैयार करना देशोद्धार से भी कठिन काम है । विद्यार्थियों से अगर ग्रामर और अलजबरा के अलावा कोई बात कहो तो हेडमास्टर ख़फ़ा होते हैं । दो ही तीन महीने में मेरा भी उत्साह फीका पड़ गया ।

मुझ ऐसे प्रतिभाहीन मनुष्य घर में बैठ कर तरह तरह की कल्पनायें करते हैं । लेकिन कार्यक्षेत्र में उतरने पर, कन्धे पर हल रक्खे हुए बैल की तरह, पीछे से घूँसे-डण्डे खाते हुए सिर

झुकाये सब सहते हैं, और इस तरह नित्य मिट्टी के ढेले फोड़ने का काम करके शाम को जो उन्हें आधे पेट घास या भूसा मिलता है उसी में सन्तुष्ट रहते हैं। उछल-कूद के लिए उत्साह नहीं रहता।

मैं दशाश्वमेध घाट के ऊपर ही एक छोटे से मकान में रहता था। वहाँ गङ्गाजी की अपूर्व शोभा और गंगातट का सबेरे का मनोहर दृश्य देखने को मिलता था। नित्य गंगा-स्नान का भी सुयोग था।

अभी तक मैंने एक बात का उल्लेख नहीं किया। यहाँ के सरकारी वकील पंडित सुन्दरलाल मेरे घर के पास ही रहते थे। मुझे मालूम हो चुका था कि मेरी बाल्यसखी श्यामा के पति यही हैं, और श्यामा इसी घर में रहती है। एक आध बार मैंने उसे गङ्गा में नहाने के लिए जाते देखा था।

पंडित सुन्दरलाल से एक दिन गंगा-तट पर जान-पहचान हो गई। बातों बातों में उन्होंने यह भी बतलाया कि फ़तेहपुर में मेरे महल्ले में ही उनकी सुसराल है। लेकिन मैंने उन्हें यह नहीं बतलाया कि श्यामा लड़कपन में मेरे साथ खेली है और पहले मेरे ही साथ उसका ब्याह होनेवाला था। सच तो यह है कि श्यामा को एक तरह से मैं भुला चुका था।

एक दिन स्कूल में छुट्टी थी। अकेले बैठे बैठे जी ऊबा। मैं उठ कर वकील साहब की बैठक में गया। बातों बातों में भारत की दुर्दशा का ज़िक्र छिड़ गया। वह भारत की दुर्दशा के

लिए विशेष चिन्तित या दुःखित नहीं थे। किन्तु यह विषय ही ऐसा है कि हर एक आदमी इस सम्बन्ध में घण्टे दो घण्टे अनायास दुखड़ा रो सकता और अपनी देशभक्ति का परिचय दे सकता है।

इसी प्रकार की बातें हो रही थीं, इसी बीच में बैठक के पीछे के दरवाज़े के पास चूड़ियों की खनक सुनाई पड़ी। मुझे स्पष्ट मालूम पड़ा कि दो कौतूहलपूर्ण नेत्र किवाड़ों की दराज़ों से मुझे देख रहे हैं।

उसी समय मुझे दो आँखें याद आगईं, किसी की विश्वास, सरलता और बचपन की प्रीति से भरी हुई दो बड़ी बड़ी आँखें, काली काली पुतलियाँ, घनी पलकें, स्थिर दृष्टि मानों आँखों के आगे आगईं। सहसा किसी ने मानों मेरे हृदय को दृढ़ मुट्ठी से दबा लिया। मेरा हृदय ज़ोर ज़ोर धड़कने लगा और एक प्रकार की व्यथा भी मालूम पड़ी।

घर लौट आया, लेकिन हृदय में वह व्यथा बनी ही रही। लिखने-पढ़ने में या लड़कों को पढ़ाने में भी मन न लगता था। हृदय का वह भाव किसी तरह दूर न होता था। मन के ऊपर मानों किसी ने बड़ा भारी बोझ रख दिया हो।

शाम के समय घाट पर बैठ कर, चित्त को स्थिर करके, मैं सोचने लगा—ऐसा क्यों हुआ? हृदय के भीतर से उत्तर मिला—तुम्हारी वह श्यामा कहाँ गई?

मैंने इसके उत्तर में कहा—मैंने तो उसे अपनी इच्छा से छोड़ दिया है। वह क्या सदा मेरे लिए बैठी रहती?

हृदय के भीतर से जैसे किसी ने कहा—उस समय जिसे तुम चाहते तो सहज में जन्म भर के लिए पा सकते थे; उसे, सिर पटकने पर भी, आज एक बार आँख भर देखने का भी अधिकार तुमको नहीं है। वह बाल्यसखी श्यामा चाहे जितना ही तुम्हारे निकट रहे, चाहे उसकी चूड़ियों का शब्द सुनो और अपनी ओर उसके देखने का अनुमान करो, लेकिन तुम्हारे और उसके बीच में एक बड़ा भारी अन्तर बना ही रहेगा।

मैंने कहा—हानि क्या है? श्यामा मेरी कौन है!

हृदय से इसका उत्तर मिला—सच है कि आज श्यामा तुम्हारी कौन है, लेकिन श्यामा तुम्हारी ही हो सकती थी।

यह तो सच है। श्यामा मेरी ही हो सकती थी। वह मेरी सबसे सगी, अपनी और सुख-दुःख में साथ रहनेवाली हो सकती थी। लेकिन आज वह इतनी दूर है, इतनी ग़ैर है कि आज उसे देखना बुरा है, उसके साथ बात करना दोष है और उसका ख़याल करना भी पाप है। और, सुन्दरलाल, जिसे वह जानती भी न थी, न जाने कहाँ से आकर उसका स्वामी बन बैठा। सिर्फ़ दो-चार ब्याह के मन्त्रों की बदौलत दम भर में जन्म भर के लिए उसने श्यामा पर अधिकार कर लिया।

मैं मनुष्य-समाज में नई नीति का प्रचार करना नहीं

चाहता, समाज को या उसके बन्धन को तोड़ना नहीं चाहता। मैं केवल अपने मन का असली भाव प्रकट कर रहा हूँ। मन में जिन भावों का उदय होता है क्या वे सभी सङ्गत और निर्दोष होते हैं! मैं इस बात को किसी तरह अपने मन से दूर न कर सकता था कि सुन्दरलाल के घर में—दीवाल की आड़ में—जो श्यामा रहती है वह सुन्दरलाल से भी बढ़कर मेरी है। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि ऐसा सोचना बहुत ही असङ्गत और अनुचित है; लेकिन अस्वाभाविक नहीं है।

इन दिनों किसी काम में मेरा मन न लगता था। दोपहर के समय क्लास में जब लड़के गुनगुना कर याद करते थे, बाहर सन्नाटा छाया रहता था, कुछ गर्म हवा के झोंकों में नीम के फूलों की भीनी भीनी महक आती थी, तब जी चाहता था—क्या जी चाहता था, सो मैं ख़ुद ही नहीं बता सकता। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि भारत के भावी आशास्थलों—विद्यार्थियों—को कोरा व्याकरण रटाने में ही ज़िन्दगी बिता देने को जी नहीं चाहता था।

स्कूल से लौटकर घर में बैठने को जी नहीं चाहता था। किन्तु उधर किसी से मिलना या बातचीत करना भी नापसन्द हो चला था। मस्तक में हर घड़ी उलझन सी बनी रहती थी—चित्त चिन्ता से चञ्चल बना रहता था। मैं कोठे की खुली छत पर जाकर गंगा की ओर मुँह करके बैठता था। वहाँ से घाट का सब दृश्य भी देख पड़ता था। कभी कभी चिन्ता का वेग

होने पर गंगातट के दृश्य देख कर ही मैं अपने चित्त को शान्त करने का—धैर्य देने का—प्रयत्न करता था ।

मेरा मन मुझसे कहता था कि तुम अगर श्यामा के पति होते तो तुम्हारा बुढ़ापा तक सुख से बीतता । तुम होने चले थे गेरीबाल्डी, लेकिन अन्त को हुए क्या, एक हाई स्कूल के सेकिंड मास्टर ! और सुन्दरलाल वकील—जिन्हें ख़ास कर श्यामा की ही कुछ ज़रूरत न थी, जिनके लिए ब्याह के पहले दिन तक जैसे श्यामा थी वैसे मुन्नी थी—आज श्यामा के पति हैं । वह श्यामा को नहीं चाहते, चाहते हैं सेवा करनेवाली स्त्री । जब कोई काम बिगड़ जाता है, तब डाँटते हैं, और जब ख़ुश होते हैं तब गहने भी गढ़वाते हैं । ख़ूब मोटे ताज़े, चपकन पहने, रोज़ उठने-नहाने-खाने-पीने-कमाने और सोजाने के फेर में पड़े रहते हैं । श्यामा के रूठ जाने पर वह कभी आकाश के तारे गिन कर रात नहीं बिताते, इत्यादि ।

इसी बीच में पंडित सुन्दरलाल को एक मुक़द्दमे के लिए प्रयाग जाना पड़ा । उस दिन अपने घर में जैसे मैं अकेला था वैसेही शायद श्यामा भी अपने घर में अकेली थी ।

उस दिन शायद सोमवार था । सबेरे ही से बादल घिरे हुए थे । दस बजे से पानी बरसने लगा । पानी बड़े ज़ोर का उठा । हेडमास्टर साहब ने रंग-ढंग देख कर छुट्टी कर दी । मैं जैसे घर पहुँचा हूँ वैसेही मूसलधार पानी बरसने लगा और साथ ही अन्धड़ भी चलने लगा । धीरे धीरे रात हुई । रात्रि के

साथ ही आँधी-पानी का ज़ोर चौगुना हो गया। बरसात की गङ्गा कोस भर के पाट में हाहाकार करती हुई बह रही थीं।

ऐसी भयानक रात में सोने की चेष्टा करना व्यर्थ हुआ करता है। एकाएक मुझे याद आगई, ऐसी बुरी रात में मेरी ही तरह श्यामा भी घर में अकेली होगी। मैंने सोचा, श्यामा जिस घर में रहती है वह पुराना और शिथिल है। उसकी अपेक्षा मेरा यह नया बना हुआ घर मज़बूत है। कई बार मन में लहर आई कि श्यामा को चल कर इस घर में ले आऊँ। वहाँ मकान गिर पड़ने से भारी अनर्थ हो जायगा। मैं दरवाज़े पर मन्दिर में सो रहूँगा। लेकिन ऐसे अवसर में अकेली श्यामा के पास जाने में जी हिचक उठा।

आधी रात बीत गई। एक बजे के समय आँधी पानी ने बड़ा ज़ोर पकड़ा। मैं घबरा कर दरवाज़े पर आ गया। दरवाज़े पर आते ही मैंने देखा कि कोई स्त्री पंडित सुन्दरलाल के घर से निकल कर पानी में उतर रही है। देखते ही मेरे रोम रोम ने कह दिया कि यह श्यामा है। श्यामा को पानी मँझाकर, पानी में डूबे हुए घाट के बुर्ज की ओर आते देखकर मेरे पैर मानों आप ही उस ओर चल दिये।

घाट भर डूबा था। इधर उधर की दोनों ऊँची बुर्जियाँ हाथ हाथ भर खुली हुई थीं। हम दोनों, दोनों ओर से आकर उसी दस बारह हाथ के टापू में आमने सामने, कुछ फ़ासले पर, खड़े हो गये।

वह प्रलयकाल था। उस समय आकाश में तारों की चमक न थी, और पृथ्वी पर के सब प्रकाश बुझ गये थे। उस समय एक आध बात करने में भी कोई हानि न थी। लेकिन किसी ने कोई बात नहीं की। किसी ने कुशल-प्रश्न भी नहीं किया।

केवल उस घोर अन्धकार की ओर दोनों जने ताकते रहे। पैरों के नीचे महान् मृत्यु का प्रवाह दारुण गर्जन के साथ, मानों सारे संसार को ग्रसने के लिए, दौड़ता चला जा रहा था। देखते ही देखते बुर्जियाँ भी जलमग्न हो गईं। हम दोनों कमर भर पानी में खड़े थे।

आज सारे संसार को छोड़ श्यामा मेरे पास आकर खड़ी हुई है। आज मेरे सिवा श्यामा का और कोई नहीं है। उस बचपन में श्यामा किसी जन्मान्तर—किसी अज्ञात पुराने रहस्य के अन्धकार—से इस सूर्य-चन्द्र-प्रकाशित जनपरिपूर्ण पृथ्वी-मण्डल में मेरे ही पास आकर लगी थी। और आज, इतने दिनों के बाद, उस प्रकाश-पूर्ण मनुष्यों से भरी पृथ्वी को छोड़ कर इस भयङ्कर प्रलय के जनशून्य अन्धकार में श्यामा अकेले मेरे ही पास खड़ी है। जन्म-स्रोत ने उस नई कली को मेरे पास लगाया था और मृत्यु के प्रवाह ने भी इस खिले हुए फूल को मेरे पास पहुँचा दिया है। इस समय और हाथ दो हाथ पानी चढ़ आवे तो एक ही लहर में हम दोनों बचपन के बाधाहीन भाव से फिर मिल जायँ।

लेकिन नहीं, वह लहर न आवे। श्यामा अपने पति के साथ सुख से ज़िन्दगी बितावे। मैं इतनी ही देर महाप्रलय के पास खड़े होकर अनन्त आनन्द का स्वाद पागया।

चार बज गये—पानी भी धीरे धीरे बुर्जों के नीचे उतर गया। श्यामा भी कुछ कहे बिना अपने घर चली गई। मैं भी चुपचाप चल दिया।

मैंने अपने मन में कहा, मैं न नाज़िर हुआ और न सरिश्तेदार ही हुआ, गेरीबाल्डी भी नहीं हुआ। मैं हूँ एक हाई स्कूल का सेकिंड मास्टर। मेरे इस जीवन भर में केवल थोड़ी देर के लिए एक अनन्त रात्रि का उदय हुआ था—अपनी आयु के सब दिनों में उन्हीं कुछ घण्टों को मैं सम्पूर्ण सफल समझता हूँ।

कापी।

लिखना सीखते ही मोती ने बड़ा उपद्रव मचा दिया। घर की हर एक दीवाल में कोयले से टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों के अक्षरों में वह लिखती फिरती है—पानी बरसता है, पत्ते हिलते हैं।

उसकी माँ भी पढ़ी-लिखी है। माँ के सिरहाने तकिया के नीचे ब्रजविलास की पोथी रक्खी थी। मोती ने उसे खोज निकाला और हर एक सफ़े में पेन्सिल से लिख दिया—माँ-बाप का कहना मानो।

बाप की बैठक में बड़ा कलेंडर टँगा था। मोती ने उसके हर एक स्थान पर सेंठे की मोटी क़लम से बड़े बड़े अक्षर बना कर उसे बेकाम कर डाला।

बाप जिस कापी में रोज़ का हिसाब-ख़र्च लिखता था उसे निकाल कर जगह जगह मोती ने लिख दिया—जो पढ़ता लिखता है वह गाड़ी-घोड़े पर चढ़ता है।

इस प्रकार की साहित्य-चर्चा में अब तक मोती मारी पीटी नहीं गई। अन्त को एक बड़ी भारी दुर्घटना होगई।

मोती के बाप मुरलीमनोहर देखने में बड़े सीधे और भोले जान पड़ते हैं, लेकिन अख़बारों में सदा उनके लेख निकला करते हैं। उनकी बातचीत सुनकर उनके आत्मीय स्वजनों या परिचित परोसियों ने कभी यह सन्देह नहीं किया कि वह एक

विचारशील लेखक हैं। और सचमुच उनको यह कलङ्क नहीं लगाया जा सकता कि उन्होंने कभी किसी बात पर विचार किया है। लेकिन वह लिखते हैं और हिन्दी के अधिकांश पाठकों से उनका मत भी मिलता है।

योरप के वैज्ञानिकों में, शरीर-तत्व के सम्बन्ध में, कुछ भारी भ्रम प्रचलित हैं। मुरलीमनोहर ने, किसी युक्ति की सहायता लिये बिना, केवल रोमाञ्चकारिणी भाषा के प्रभाव से तेजस्विता के साथ उनका खण्डन करते हुए एक बहुत ही उपादेय लेख लिखा था।

मोती ने एक दिन दोपहर के सन्नाटे में बाप की दावात-क़लम लेकर उसी लेख के हर एक पृष्ठ पर कई एक बार बड़े बड़े अक्षरों में लिख दिया—माधो बड़ा अच्छा लड़का है, उसे जो चीज़ दी जाती है उसे ही वह खाता है।

हमें तो यह विश्वास नहीं होता कि मोती ने मुरलीमनोहर के प्रबन्ध-पाठकों पर लक्ष्य करके माधो की इस हालत का उल्लेख किया हो। जो हो, मुरलीमनोहर के क्रोध का वारपार न था। पहले मुरलीमनोहर ने मोती को मारा, उसके बाद उसकी स्वल्पावशिष्ट पेंसिल, आदि से अन्त तक स्याही से सनी हुई टूटी-फूटी क़लम और उसका बहुयत्न-सञ्चित बस्ता छीन लिया। ऐसे अपमान के बाद, बालिका अपने ऐसे कठिन शासन का कुछ कारण अच्छी तरह न समझ सकने के कारण किनारे बैठकर, फूट फूटकर, रोने लगी।

थोड़ी देर के बाद मुरलीमनोहर का क्रोध शान्त हुआ। उन्हें अपनी करनी के लिए कुछ खेद भी हुआ। मोती को छिनी हुई चीजें फिर मिल गईं। इसके अलावा एक रूलदार कागज़ की जिल्द बँधी कापी भी मोती को मिली। मोती बहुत प्रसन्न हुई।

जिस समय का ज़िक्र है उस समय मोती सात बरस की था। जब से कापी मोती को मिली तब से वह रात को मोती के तकिया के नीचे और दिन को उसकी बग़ल या गोद में विराजमान रहती थी।

छोटी सी चोटी गूँथ कर झाँझें बजाती हुई महरी के साथ जब वह कन्या-पाठशाला को जाती थी तब उस कापी को भी साथ लिये रहती थी। उस कापी को देखकर किसी लड़की को विस्मय, किसी लड़की को लोभ, और किसी लड़की को डाह होता था।

पहले साल बड़े यत्न से मोती ने कापी में लिखा—चिड़ियाँ बोलने लगीं, सबेरा हो गया। वह कमरे के फ़र्श पर कापी को जाँघ पर रखकर ऊँचे स्वर में पढ़ती और लिखती थी। इसी तरह उस कापी में बहुत से गद्य और पद्यों का संग्रह होगया।

दूसरे साल बीच बीच में दो एक स्वतन्त्र रचनायें भी देख पड़ने लगीं। वे अत्यन्त संक्षिप्त और अत्यन्त सारवान् थीं—न भूमिका थी, न उपसंहार था। उनमें से दो एक यहाँ पर उदधृत की जाती हैं।

कापी में जहाँ पर उसने हिन्दी-शिक्षावली से रहीम के कुछ दोहों की नक़ल की थी वहाँ उसके नीचे एक लाइन मोती की स्वतन्त्र रचना देख पड़ी—वह रचना हिन्दी-शिक्षावली या हिन्दी-साहित्य के अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिल सकती। लिखा था—मैं गौरी को बहुत चाहती हूँ।

कोई यह न समझे कि गौरी कोई महल्ले का ग्यारह बारह बरस का लड़का होगा। गौरी एक बिल्ली थी, जिसे मोती ने पाल रक्खा था। लेकिन इससे यह न समझ लेना चाहिए कि मोती सचमुच गौरी को ख़ूब चाहती थी। दूसरे ही सफ़े में मोती ने गौरी के मर जाने के लिए भी परमेश्वर से प्रार्थना की थी। मोती की रचना में पग पग पर परस्पर विरोध-दोष देख पड़ता है। एक जगह लिखा था—पन्ना से सदा के लिए खुट्टी। उसके बाद थोड़ी ही दूर पर ऐसी बात लिखी थी, जिससे जान पड़ता था, पन्ना के बराबर प्यारी सखी और कोई नहीं है।

तीसरे साल—नव वर्ष की अवस्था में—मोती का ब्याह पक्का होगया। ब्याह की धूम मच गई। मोती के दुलहे का नाम निरञ्जनलाल था। वह भी लेखक और, अवस्था थोड़ी होने पर भी, मुरलीमनोहर के साथियों में था। निरञ्जन ने थोड़ी-बहुत अँगरेज़ी भी पढ़ी थी। लेकिन उसके दिमाग़ में नये फ़ेशन की बू-बास बिलकुल नहीं पहुँची थी। इसी लिए महल्ले के लोग सदा उसकी प्रशंसा के पुल बाँधा करते थे। मुरली-

मनोहर उसके अनुकरण की चेष्टा करके भी सम्पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त कर सके।

मोती रोते रोते सुसराल को चली। माँ ने कह दिया—बेटी, सास का कहा मानना। घर का कामकाज करना। लिखना-पढ़ना लेकर न बैठना।

मुरलीमनोहर ने कहा—देख, वहाँ दीवाल में कोयले से न लिखना; वह वैसा घर नहीं है। ख़बरदार निरञ्जन के किसी काग़ज़ पर कुछ न लिखना।

बालिका का हृदय धड़क उठा। तब उसे मालूम हुआ कि वह जहाँ जा रही है वहाँ कोई उसे माफ़ न करेगा।

घर की कहारी सुखिया भी मोती के साथ, कुछ दिनों पास रहकर मोती का जी बहलाने के लिए, गई।

बहुत कुछ सोच विचार कर सुखिया मोती की वह कापी भी उसके साथ लेती गई। वह कापी मोती के मायके का एक अंश थी। उसके मायके का उसे स्मृतिचिह्न अथवा पिता-माता की गोद का एक संक्षिप्त इतिहास समझना चाहिए। उसमें अत्यन्त टेढ़े मेढ़े अक्षरों में मोती के मन की अनेक बातें लिखी हुई थीं।

सुसराल जाकर पहले तो कुछ दिनों तक मोती ने कुछ लिखा ही नहीं। फ़ुरसत भी नहीं मिली। अन्त को कुछ दिन के बाद सुखिया चली आई।

उस दिन मोती ने दोपहर को कमरे के किवाड़े बन्द

करके सन्दूक़ से वह कापी बाहर निकाली और उसमें रोते रोते लिखा—"सुखिया घर चली गई, मैं भी अम्मा के पास जाऊँगी।" आज-कल हिन्दी-शिक्षावली या बाला-विनोद से कुछ नक़ल करने की फ़ुरसत नहीं मिली। यही कारण है कि आज-कल बालिका की रचना बहुत दूर दूर पर नहीं देख पड़ती। पूर्वोक्त वाक्य के बाद ही उस कापी में लिखा है—बप्पा अगर घर ले जायँ तो मैं फिर कभी उनके काग़ज़ ख़राब न करूँगी।

शायद मोती की माँ कभी कभी मोती को बिदा करा लाने की चेष्टा करती हैं। लेकिन मुरलीमनोहर और निरञ्जन दोनों ही इस बात के ख़िलाफ़ हैं।

मुरलीमनोहर कहते हैं कि यही तो पति-भक्ति सीखने का समय है। इस समय उसे सुसराल से हटाना उसमें विघ्न डालना है। इस विषय पर मुरलीमनोहर ने उपदेश और व्यंग्य से परिपूर्ण एक ऐसा सुन्दर लेख लिखा कि उसके भक्त पाठकगण उस लेख की उत्तमता और सचाई को स्वीकार किये बिना नहीं रह सके।

एक दिन मोती द्वार बन्द किये अपने कमरे में उसी कापी पर ऐसी ही कोई बात लिख रही थी। उसकी ननद बेला को बन्द किवाड़ों के भीतर का रहस्य जानने के लिए बड़ा ही कौतूहल हुआ। उसने अपने मन में सोचा, भौजी किवाड़े बन्द किये क्या कर रही है, देखना चाहिए। उसने दरवाज़े की

दराज़ से झाँककर देखा, वह लिख रही थी। देख कर बेला सन्नाटे में आगई! इस अन्तःपुर में कभी इस तरह गुप्त रूप से सरस्वती का आगमन नहीं हुआ।

बेला से छोटी चमेली ने भी आकर झाँक कर देखा। उससे छोटी जूही ने भी उँगलियों के बल उचक कर भीतर का रहस्य जान लिया।

लिखते लिखते अचानक मोती को कमरे के बाहर लड़कियों के खिलखिला कर हँसने की आवाज़ सुन पड़ी। मोती सब समझ गई। उसने जल्दी से वह कापी सन्दूक़ में बन्द करदी और लज्जा तथा भय के मारे बिछौने में मुँह लगा कर लेट रही।

यह ख़बर पाकर निरञ्जनलाल को बड़ी चिन्ता हुई। पढ़ना-लिखना शुरू होते ही घर में उपन्यासों और क़िस्से-कहानियों की आमदनी होगी और गृहधर्म की रक्षा करना कठिन हो जायगा।

इसके सिवा इस बारे में विशेष विचार करके निरञ्जन ने एक सूक्ष्म तत्त्व का आविष्कार किया था। वह कहता था कि स्त्री-शक्ति और पुरुष-शक्ति, दोनों शक्तियों के मिलने से पवित्र दाम्पत्य-शक्ति प्रकट होती है। किन्तु लिखने-पढ़ने से यदि स्त्री-शक्ति परास्त हो जाय और बिलकुल पुरुष-शक्ति ही का प्रादुर्भाव हो तो पुरुष-शक्ति के साथ पुरुष-शक्ति के घात प्रतिघात से एक ऐसी प्रलय-शक्ति उत्पन्न होती है कि उसके द्वारा दाम्पत्य-शक्ति

विनाश-शक्ति में लीन होजाती है। फल यह होता है कि स्त्री विधवा होजाती है। आज तक उसके आविष्कृत इस नये तत्त्व का प्रतिवाद कोई नहीं कर सका।

निरञ्जन ने शाम को घर आकर मोती को विधिपूर्वक डाँटा और उपहास के तौर पर कहा—अब शायद मुझे घर में रहकर गिरिस्ती के काम देखने पड़ेंगे और तुम कान में क़लम खोंसकर दफ़्तर में नौकरी करने जाओगी।

मोती कुछ भी अच्छी तरह न समझ सकी। निरञ्जन का कोई लेख कभी उसने पढ़ा नहीं, इसीसे वह अभी तक ऐसी समझदार नहीं हुई। लेकिन भीतर ही भीतर मारे संकोच और लज्जा के मानों वह मर गई।

मोती ने फिर बहुत दिनों तक कुछ नहीं लिखा। एक दिन एक भीख माँगने वाली औरत द्वार पर खड़ी होकर—"क्या श्याम गौर गुलबदन मदन का जोड़ा। जिन शिवशङ्कर का कठिन शरासन तोड़ा॥" यह लावनी गाने लगी।

मोती गीत नहीं गा सकती थी। लेकिन जब से उसको लिखने का अभ्यास होगया तब से वह किसी गीत को सुनने पर उसे लिखकर गाने के शौक़ को पूरा कर लेती थी।

घर में मर्द कोई न था। मोती की सास ऊपर सो रही थीं। मोती की ननदें भी खेल रही थीं। मोती ने उस भीख माँगनेवाली को चुपके से भीतर बुला लिया और उससे पूछ पूछ कर इस लावनी को उसी कापी में लिखने लगी।

मोती की ननदें बाहर खेल रही थीं। उन्होंने बन्द दरवाज़े में झाँक कर देखा, ड्योढ़ी में मोती लिख रही है। सहसा ताली पीट कर तीनों कहने लगीं—भौजी, क्या करती हो? हमने सब देख लिया।

मोती का कलेजा धड़कने लगा। उसने जल्दी से किवाड़ खोल दिये और कातर स्वर से कहा—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, भई, किसी से कहना नहीं—अब मैं कभी न लिखूँगी!

मोती ने देखा, बेला कापी की ओर ताक रही है। मोती ने झपट कर जल्दी से अपनी कापी उठाली। ननदों ने बहुत कुछ ज़ोर लगा कर वह कापी छीननी चाही, लेकिन छीन नहीं सकीं।

इतने में निरञ्जन आ गया। बेला ने सब हाल कह दिया। निरञ्जन गम्भीर भाव से गरज कर बोला—"कापी लाओ।" आज्ञा पालन न होते देख कर ज़रा धीमे सुर में कहा—लाओ।

कापी को छाती से लगा कर बालिका दीन दृष्टि से अपने स्वामी की ओर देखने लगी। जब मोती ने देखा—निरञ्जन छीनने के लिए बढ़ रहा है तब उसने वह कापी फेंक दी और दोनों हाथ से मुँह ढक कर ज़मीन पर लोटने लगी।

निरञ्जन कापी उठाकर मोती के लिखे को ऊँचे स्वर से पढ़ने लगा। सुनकर मोती और भी ज़मीन से लिपटने लगी और तीनों ननदें भी हँसते हँसते लोट गईं।

फिर मोती को वह कापी नहीं मिली। निरञ्जन के भी सूक्ष्म-तत्त्व-पूर्ण विविध लेखों से अलङ्कृत एक कापी थी। लेकिन ऐसा कोई मनुष्य हितैषी न था जो उससे वह कापी छीन लेता।

नाटक की नटी।

द्वारकाप्रसाद के तिमंज़िले मकान के ऊपरी खण्ड में उनके लड़के गोपीनाथ की स्त्री रहती है। सोने के कमरे के दक्षिण द्वार के सामने टबों में कुछ बेला और गुलाब के पेड़ रक्खे हुए हैं। छत के चारों ओर ऊँची दीवाल घिरी हुई है। दीवाल में बाहर का दृश्य देखने के लिए झँझरी बनी हुई है। सोने के कमरे में तरह तरह की विलायती औरतों की तसवीरें टँगी हुई हैं। सामने लगे हुए बड़े भारी आयने में, प्रवेश करते समय, घर की मालकिन का जो प्रतिबिम्ब देख पड़ता है, वह भी सौन्दर्य में किसी चित्र से कम नहीं होता।

गोपीनाथ की स्त्री का नाम चुन्नी था। चुन्नी का सौन्दर्य अकस्मात् प्रकाश-किरणों की तरह, विस्मय की तरह, नींद खुलने पर चेतना की तरह-एक-दम एकाएक आँखों के आगे आकर एक धक्का मारता है। उसको देखने से जान पड़ता है, जैसे उसे देखने के लिए मैं पहले से तैयार न था। चारों ओर चिरकाल से जो रूप देखा जाता है उससे मानों बिलकुल ही जुदा वह रूप है।

चुन्नी जब अँगड़ाई लेती है तब जान पड़ता है कि सुन्दरता के सागर में लहरें उठ रही हैं। ताड़ी का फेना जैसे घड़े से उबल उबल कर बाहर गिरता है वैसेही नवीन सौन्दर्य उसके अङ्ग अङ्ग

से टपका पड़ता है। उसके गहनों में, कपड़ों में, चाल में, हाथ उठाने में, गर्दन मटकाने में, चञ्चल चरणों के विलास में, बिछुओं के घुँघरुओं की आवाज़ में, हँसने में और देखने में जैसे जादू भरा हुआ है। जवानी के नशे में वह जैसे मस्त बनी रहती है।

अक्सर वह एक कोमल रंगीन रेशमी धोती पहने छत के ऊपर अकारण चञ्चल भाव से इधर से उधर टहला करती है। जैसे उसके हृदय के भीतर के किसी अश्रुत अव्यक्त संगीत की हर एक ताल पर उसके अंग-प्रत्यङ्ग नाचना चाहते हैं। अपने अङ्गों को तरह तरह से हिलाने-डुलाने, चलाने और मटकाने में जैसे उसे कुछ विशेष आनन्द मिलता है। वह जैसे अपने सौन्दर्य-पूर्ण शरीर में चारों ओर आन्दोलन उत्पन्न कर चक्कर मार रहे ख़ून के विचित्र घात-प्रतिघात का अनुभव करती है। वह टहलते टहलते पेड़ से पत्ता नोचकर दाहने हाथ से उसे मल कर ऊपर उछाल देती है—वैसेही उसकी चूड़ियाँ बज उठती हैं, आँचल खिसक जाता है, उसके उस सुडौल गोल हाथ की अदा, पिंजड़े से निकले हुए पक्षी की तरह—आकाश की ओर उड़ जाती है। एकाएक वह टब से एक मिट्टी का ढेला उठाकर अकारण किसी ओर फेंक देती है; पैरों की उँगलियों के सहारे उचक कर झँझरी से बाहर के दृश्य को एक बार देख लेती है; फिर घूमती हुई आँचल में बँधे चाभियों के गुच्छे को नचाती और बजाती कमरे में चली जाती है।

वह कभी कभी आयने के सामने जाकर बँधा हुआ जूड़ा अकारण खोल डालती है और बेवक्त ही उसे बाँधने बैठती है। जूड़े की लटों में डोरी गूँथकर दोनों बाँहें ऊपर उठा कर जूड़ा बाँधती है। फिर हाथ में कोई काम नहीं रहता। तब वह आलस के मारे कोमल बिछौने पर जाकर लेट रहती है। जान पड़ता है, पत्तों के भीतर से आई हुई चाँदनी पलँग पर पड़ी है।

चुन्नी के कोई बाल-बच्चा नहीं है। वह रईस की लड़की और रईस की ही जोड़ू है। उसके लिए करने को घर में कुछ विशेष काम काज नहीं है। वह निर्जन में अकेले नित्य अपनी जवानी को अपने में जमा कर रही है। अब वह जवानी मानों उससे सँभाले नहीं सँभलती। पति है, लेकिन उसके क़ाबू में नहीं है। लड़कपन से ही ऐसे सौन्दर्य से पूर्ण जवान चुन्नी अपने स्वामी को, न जाने क्यों, वश में नहीं कर सकी।

बल्कि लड़कपन में, जब ब्याह हुआ था, गोपीनाथ चुन्नी को प्यार करता था। तब वह स्कूल से भाग कर, सो रहे बड़े बूढ़ों से छिप कर, एकान्त स्थान में दोपहर को अपनी बालिका स्त्री से प्रेमालाप करने आता था। एक घर में रह कर भी वह रंगीन बेल-बूटेदार चिट्ठी के काग़ज़ों में चुन्नी को चिट्ठी लिखता था। चुन्नी भी पति की प्रसन्नता के लिए उन चिट्ठियों का उत्तर लिखती थी। स्कूल के यार-दोस्तों को वे चिट्ठियाँ दिखा कर गोपीनाथ फूला नहीं समाता था। तुच्छ और बनावटी कारणों पर दोनों परस्पर रूठ भी जाते थे।

इसी बीच में द्वारकाप्रसाद मर गये। गोपीनाथ ख़ुद-मुख़्तार होगये। कच्ची लकड़ी के तख़्ते में जल्द घुन लग जाते हैं। कच्ची उमर में जब गोपीनाथ छुटे-बन्धन होगया तब अनेक जीव-जन्तुओं ने उसे घेर लिया। धीरे धीरे भीतर का जाना कम होचला। गोपीनाथ को बाहर घूमने से ही फ़ुरसत न मिलती थी।

किसी दल के प्रभु होने का एक तरह का नशा होता है। मनुष्य को मनुष्य का नशा बड़ा बेढब होता है। असंख्य मनुष्य-जीवन और सुविस्तृत इतिहास के ऊपर अपना प्रभाव फैलाने का नशा जैसे नेपोलियन को था वैसे ही एक छोटी सी बैठक में दस पाँच मुसाहबों के बीच बैठे हुए नौजवान रईस को भी अपने छोटे से दल पर प्रभाव फैलाने का नशा हो सकता है। दोनों नशे एक ही श्रेणी के हैं। अपने आस-पास बेकार ख़ुशामदी मतलबी यारों को जमा करके उनके ऊपर आधिपत्य स्थापित करने और उनके मुँह से 'वाह वाह' सुनने के लिए एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है। बहुत से लोग ऐसी अवस्था में सोहबत के मज़े उड़ाने के लिए सर्वस्व फूँकने, ऋण लेने और सिर पर कलङ्क की गठरी लादने को भी तैयार हो जाते हैं।

गोपीनाथ ऐसी यारों की मण्डली का मालिक बनकर अपने को भूल गया। वह यारों से अपनी बड़ाई सुनने के लिए नित्य नई 'कीर्त्ति' में सैकड़ों रुपये फूँकने और यारों का घर भरने

लगा । यार लोग कहने लगे—"दुनिया में है क्या, खाना और खिलाना । जिसने यह न जाना वह मानों दुनिया में पैदा ही नहीं हुआ । अच्छा भई, इस बात में तो दूर दूर तक हमारे भैया साहब (गोपीनाथ) का सामना करने वाला न निकलेगा ।" इस तरह के बढ़ावे में आकर गोपीनाथ दिन-रात अपने बाप का रुपया और इज़्ज़त मिट्टी में मिलाने लगा ।

इधर चुन्नी जगत् भर को जीत लेने की शक्ति रखने वाले अपने रूप को लिये घर के भीतर निर्जन सोने के कमरे में अकेली पड़ी रहती थी । वहाँ से उठकर इधर-उधर टहल कर, पत्ते तोड़ कर, मिट्टी फेंक कर, अँगड़ा कर, जम्हा कर, बाहर झाँक कर अपने चित्त की चञ्चलता प्रकट करती थी । वह जानती थी कि विधाता ने उसके हाथ में सौन्दर्यरूपी राजदण्ड दिया है—वह जानती थी कि झँझरियों के छेद से बाहर जो बड़ा भारी जगत् देख पड़ता है उसे मैं एक कटाक्ष में जीत ले सकती हूँ । लेकिन अफ़सोस, इस संसार में वह एक आदमी को भी अपने वश में नहीं कर सकी !

चुन्नी के एक हँसमुख कहारी है । वह दिन-रात उसके पास रहती है । उसका नाम है गुलबिया । वह गाती थी, बजाती थी, नाचती थी, नौटंकी के चौबोले कहती थी, मालकिन के रूप का बखान करती थी और यह कह कर अक्सर खेद प्रकट करती थी कि अरसिक के हाथ पड़ने से ऐसी जवानी—ऐसा रूप निष्फल ही हुआ जाता है । गुलबिया के बिना पल

भर भी चुन्नी नहीं रह सकती थी। उलट पुलट कर, प्रश्न पर प्रश्न करके, वह गुलबिया के मुँह से अपने चेहरे की खूबसूरती, देह के सुडौलपन और रङ्ग की सफ़ाई आदि की समालोचना सुनती थी। बीच बीच में उसका प्रतिवाद भी करती थी और मन ही मन गद्गद होकर गुलबिया को झूठी खुशामदिन कहना भी नहीं भूलती थी। तब गुलबिया सैकड़ों क़समें खा खा कर अपने पक्ष का समर्थन करने लगती थी। चुन्नी को इस तरह अपनी बड़ाई सुनने की आदत सी पड़ गई थी।

गुलबिया चुन्नी को गाना सुनाती थी।

चरन तेरे हिय में रहत मेरे प्यारी।
अति सुकुमार जान जिय अपने राखे हृदय-मँझारी ॥
बिना दाम को है ग़ुलाम यह नागर रसिकबिहारी ॥

इस गीत में चुन्नी अपने महावर से सुशोभित चरण कमलों की स्तुति सुन पाती थी। उसके हृदय में कल्पना के द्वारा पैरों पर लोट रहे एक बिना दाम के ग़ुलाम की मूर्ति अंकित हो जाती थी। किन्तु हाय, वे दोनों चरण सूनी छत पर झाँझों की झनकार करते हुए इधर-उधर घूमा करते हैं, तब भी कोई अपनी इच्छा से बिका हुआ भक्त आकर उन्हें हृदय में धारण नहीं करता।

गोपीनाथ जिसका बिना दाम का ग़ुलाम बन चुका है उसका नाम है किशोरी। वह थियेटर में अभिनय करती है। वह स्टेज के ऊपर मूर्च्छा का ऐसा अच्छा अभिनय करती है

कि सैकड़ों दर्शकों को अपनी सुध-बुध नहीं रहती। वह नकी स्वर में बनावटी विलाप करते समय ऐसे अच्छे ढंग से 'हाय हाय' और प्यारे इत्यादि सम्बोधनों का उच्चारण करती है कि दर्शक-मण्डली 'एक्साइलेंट—एक्साइलेंट' 'वाह—वाह' कह कर चिल्ला उठती है।

पहले पहल जब गोपीनाथ बिलकुल घर से ग़ायब नहीं रहता था तब कई बार वह चुन्नी के आगे किशोरी की अभिनय करने की विचित्र शक्ति की बड़ाई कर चुका है। उस समय चुन्नी को यह नहीं मालूम था कि उसका पति किशोरी पर मोहित है, तथापि दूसरी औरत की तारीफ़ सुनकर मन ही मन वह खीझती और कुढ़ती थी। पति के मुख से क्या, किसी के भी मुख से वह यह बात नहीं सुन सकती कि किसी स्त्री में कोई ऐसी मनोरञ्जन की विद्या है जो उसके पास नहीं। डाह और कौतूहल के मारे चुन्नी ने कई बार थियेटर देखने जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु गोपीनाथ इस पर राज़ी नहीं हुआ।

अन्त को एक दिन चुन्नी से नहीं रहा गया। उसने एक रुपया देकर गुलबिया को नाटक देखने के लिए भेज दिया। गुलबिया ने लौट आकर, नाक-भौं सिकोड़ कर, राम का नाम लेते हुए नाटक की नटियों के सिर पर सौ झाड़ू मारने की इच्छा प्रकट की; और, उन नटियों के नक़ली रूप और हाव-भाव पर रीझनेवाले पुरुषों के लिए भी वही राय ज़ाहिर की। सुनकर चुन्नी कुछ शान्त और निश्चिन्त हुई।

इस बात को आज कई महीने हो गये। आज-कल गोपीनाथ के सिर पर किशोरी का भूत अच्छी तरह सवार है। आज-कल वह चुन्नी से अच्छी तरह बात भी नहीं करता। दिन को मुसाहबों से और रात को थियेटर से फ़ुरसत ही नहीं मिलती।

चुन्नी ने जब सुना कि गोपीनाथ किशोरी पर रीझ गया है, और वह दिन-रात उसीके फेर में रहता है तब उसे खटका हुआ। उसने गुलबिया की बात पर अविश्वास प्रकट किया। गुलबिया ने, विश्वास दिलाने के लिए, अपने लड़के की क़सम खाकर कहा कि कपड़े से लपेटे हुए जले कुन्दे के समान किशोरी का शरीर है और उसका चेहरा बहुत ही बुरा है। चुन्नी यह समझ न सकी कि किशोरी में ऐसी कौन बात है जिससे उसने गोपीनाथ को रिझा रक्खा है। वह अपने अभिमान से आपही अपने हृदय में चोट खाकर चोट खाई हुई नागिन की तरह फुफकारने लगी।

अन्त को चुन्नी से नहीं रहा गया। वह गुलबिया को साथ लेकर चोरी से थियेटर देखने गई। जो काम निषिद्ध होता है उसके लिए उत्तेजना बहुत अधिक होती है। चुराकर थियेटर जाने से उसके हृदय में जो एक प्रकार की धड़कन पैदा हो गई थी उसीके जोश में उसे वह प्रकाश-पूर्ण, जन-पूर्ण, बाजे और लोगों के शब्द से पूर्ण, और रङ्गीन पर्दों से सुशोभित नाट्यशाला स्वर्ग के समान सुन्दर देख पड़ी। दीवाल से घिरे निर्जन निरा-

नन्द घर से वह यहाँ किस आनन्दमय सौन्दर्यमय लोक में आगई ! उसे सब सपने के समान जान पड़ने लगा ।

उस दिन 'मानलीला' का अभिनय दिखलाया जाने को था । घण्टी हुई, बाजे बन्द हो गये, चञ्चल दर्शकगण दम भर में चुपचाप एकाग्र होकर बैठ गये। स्टेज के सामने की दीपक-माला और भी जगमगा उठी । पर्दा उठ गया । सुन्दर पोशाक़ पहने सहेलियाँ गाने और नाचने लगीं । दर्शकगण तालियाँ पीटकर, वाह वाह की चिल्लाहट से रह रह कर नाट्यशाला को गुँजाने लगे । यह देख कर जवान चुन्नी के शरीर में ख़ून चक्कर मारने लगा । उस संगीत की तान सुनकर, प्रकाश और पोशाक़ की छटा देख कर और वैसी प्रशंसाध्वनि सुनकर दम-भर के लिए चुन्नी समाज और संसार को जैसे भूल गई । उसने सोचा, मैं ऐसी एक जगह आगई हूँ जहाँ सौन्दर्य के लिए कोई बन्धन नहीं है । उसकी पूर्ण स्वाधीनता में कोई बाधा नहीं है ।

गुलबिया बीच बीच में पास आकर चुन्नी के कान में कहती है कि "बहू, चलो, घर लौट चलो । भैया जान जायँगे तो बड़ी आफ़त हो जायगी ।" लेकिन चुन्नी उसके कहने पर बिलकुल ध्यान नहीं देती । इस समय उसके हृदय में भय का लेश भी नहीं ।

तमाशा हो रहा था । राधा ने कठिन मान किया । कृष्ण किसी तरह रूठी राधा को मना नहीं पाते । अनुनय-विनय करते

हैं, पैरों पड़ते हैं, हाथ जोड़ते हैं, रोते-धोते हैं, मगर फल कुछ नहीं होता। उस समय गर्व से चुन्नी की छाती फूल उठी। कृष्ण की इस बेबसी को देख कर, और मन ही मन अपने को राधा मानकर, उसको अपने हृदय में अपने असीम प्रताप का अनुभव हुआ। किसी ने कभी इस तरह उसे मनाया नहीं; वह उपेक्षित अनादृत छोड़ी हुई स्त्री है, लेकिन तो भी एक अपूर्व मोह में पड़कर उसने निश्चय कर लिया कि मर्द को इस तरह रुलाने की ताक़त उसमें भी है। सौन्दर्य के प्रचण्ड प्रताप की बात उसने आज तक केवल कानों से सुनी भर थी—केवल उसका अनुमान भर कर पाया था—किन्तु आज कलकत्ते के भीतर, बिजली की रोशनी में, मीठे गाने के साथ मनोहर रङ्ग-भूमि के ऊपर स्पष्ट रूप से सौन्दर्य की महिमा प्रत्यक्ष देखने को मिल गई। उसके मस्तक में एक तरह का नशा सा व्याप्त होगया।

तमाशा ख़तम हो गया। ड्रापसीन गिर पड़ा। बिजली की रोशनी धीमी पड़ गई। दर्शकगण उठ उठ कर जाने लगे। लेकिन चुन्नी उसी तरह—मन्त्रमुग्ध की तरह—बैठी रही। उसे शायद यह ध्यान ही न था कि यहाँ से उठ कर घर जाना होगा। वह शायद सोच रही थी कि खेल समाप्त न होगा, पर्दा फिर उठेगा, कृष्ण फिर राधा को मनावेंगे। गुलबिया ने कहा—बहू, क्या कर रही हो, उठो। अभी सब रोशनी बुझ जायगी।

उस समय—आधी रात के बाद—चुन्नी अपने घर लौट आई। गोपीनाथ का पता भी न था। चुन्नी ने आकर देखा, एक कोने में रक्खी हुई लालटेन धीमी ज्योति से जल रही है। घर में न कोई आदमी है, न कोई शब्द है। उसे अपना वह पुराना घर बहुत ही उजाड़, नीरस और तुच्छ मालूम पड़ने लगा। कहाँ है वह सौन्दर्यमय प्रकाशमय संगीतमय आनन्द-मय स्थान, जहाँ वह अपनी सारी महिमा दिखाकर जगत् के केन्द्र में विराजमान हो सकती है—जहाँ वह अज्ञात अवज्ञात तुच्छ साधारण स्त्री नहीं समझी जा सकती।

अब से वह अक्सर थियेटर देखने जाने लगी। दस पाँच बार देखने से पहले का सा वह मोह बहुत कुछ कम हो गया। उसे मालूम होगया कि नाटक की औरतें और मर्द मुँह में पाउडर मल लेते हैं, इसी से उनकी चमक दमक बढ़ जाती है। वे उतने सुन्दर नहीं हैं जितने कि रात को स्टेज पर देख पड़ते हैं। कोई कोई तो बहुत ही बदसूरत हैं। अभिनय की सब बातें बनावटी हैं। तो भी उसका नशा नहीं उतरा। रणसंगीत या मारूबाजा सुनकर वीर पुरुष का हृदय जैसे उछल पड़ता है वैसे ही ड्राप-सीन उठने पर चुन्नी के हृदय की वही दशा होती थी। यह सारे संसार से अलग ऊँची सुदृश्य सुन्दर रङ्गभूमि ही ऐसी विश्वविजयिनी सौन्दर्य की रानी के लिए उत्तम माया-मय सिंहासन है। सुनहरी रेखाओं से युक्त पर्दों से सुसज्जित रङ्गभूमि काव्य और संगीत के इन्द्रजाल से हर एक पुरुष को

मोह लेने की शक्ति रखती है। नित्य असंख्य मुग्ध दृष्टियाँ उसे घेरे रहती हैं। नेपथ्यभूमि के गुप्त-भाव से वह एक अपूर्व रहस्य का रूप धारण किये हुए है और उज्ज्वल प्रकाश में सबके आगे स्पष्ट रूप से प्रकाशित भी है।

पहले पहल जिस दिन चुन्नो ने गोपीनाथ को नाट्यशाला के भीतर देखा, और जब गोपीनाथ किसी नटी के अभिनय पर रीझ कर खुले तौर से अपने हृदय की उमङ्ग ज़ाहिर करने लगे, तब चुन्नी को गोपीनाथ के ऊपर मन ही मन भारी घृणा हुई। साथ ही एक प्रकार का अनादर का भाव भी उत्पन्न हो गया। उसने अपने मन में कहा—अगर मैं अपने रूप पर रिझाकर पति को अपनी ओर खींच सकूँ और जब वह, जिसके पर जल गये हों उस पतङ्ग की तरह, मेरे पैरों पर आकर गिरे तब मैं उसे उपेक्षा और घृणा दिखा कर दुत्कार सकूँ तभी मेरा यह व्यर्थ रूप, व्यर्थ जवानी सफल हो सकती है।

लेकिन वह शुभ दिन कहाँ नसीब हो सकता है? आज-कल गोपीनाथ के दर्शन ही दुर्लभ हैं। वह अपनी उमंग की आँधी में धूल की तरह उड़ कर अपने दल के साथ न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गया है।

चैत की पूनों के दिन चुन्नो बसन्ती रङ्ग की धोती पहने छत पर बैठी थी। हवा में कामदेव की पताका के समान उसका आँचल उड़ रहा था। यद्यपि घर के स्वामी का आना-जाना भीतर बहुत ही कम होता है, तो भी चुन्नो उलट पुलट कर

अदल बदलकर नित्य नई तरह के कपड़े और गहने पहनती है। हीरे-मोती के जड़ाऊ गहने उसके हर एक अंग में एक तरह नशा पैदा कर देते थे—चमक चमक कर उसके चारों ओर मोह की लहरें पैदा किया करते थे। आज चुन्नो ने हाथों में जड़ाऊ बाजूबन्द गले में एक मोतियों की कण्ठी और बाँयें हाथ की छगुनियाँ में एक हीरे की अँगूठी पहनी है। गुलबिया पैरों के पास बैठी हुई उसके सुडौल कोमल और कमल ऐसे लाल पैरों को हाथों से सोहराती और अकृत्रिम उच्छ्वास के साथ कहती थी—आहा बहूजी, मैं अगर मर्द होती तो इन दोनों पैरों को कलेजे से लगाकर वारी हो जाती। चुन्नो ने गर्व के साथ हँस कर कहा—तो शायद कलेजे से लगायें बिना ही तुझे मरना पड़ता—तब क्या मैं इस तरह पैर फैला देती? अच्छा अब बक नहीं; तू वही गाना गा!

चाँदनी से सुशोभित उसी छत पर गुलबिया गाने लगी :—

चरन तेरे हिय में रहत मेरे प्यारी।
अति सुकुमार जानि जिय अपने राखे हृदय-मँझारी॥
बिना दाम को है गुलाम यह नागर रसिकबिहारी॥

उस समय रात के दस बजे थे। घर के बाहर बैठकख़ाने में भी सन्नाटा था। इसी समय 'ओटो दिलारा' की ख़ुशबू से तमाम घर को महकाता हुआ गोपीनाथ छत पर आया। उसे देखते ही गुलबिया दाँतों से जीभ काटकर, हाथ भर का घूँघट काढ़कर, वहाँ से जैसे जान लेकर भागी।

चुन्नी ने सोचा, आज मेरे दिन फिरे हैं। उसने सिर उठा कर देखा भी नहीं। वह राधिका की तरह कठिन मान करके बैठ रही। लेकिन दृश्य नहीं बदला—पर्दा नहीं उठा, कोई रोता रोता पैरों पर लोट नहीं गया। किसी ने दीन भाव से सामने खड़े होकर नहीं कहा:—"माँगत भिच्छा दरस की झोली पलक पसार*। तेरे जोगी नैन ये कर इनको सत्कार॥"

सङ्गीतहीन नीरस स्वर में गोपीनाथ ने कहा—ज़रा चाभी का गुच्छा चाहिए।

ऐसी वसन्त ऋतु की चाँदनी रात में, इतने दिनों के बिछोह के बाद, क्या ऐसा ही प्रथम-संभाषण होना चाहिए! काव्यों, नाटकों और उपन्यासों में जो कुछ लिखा जाता है वह सब शुरू से अख़ीर तक झूठ है। अभिनय में स्टेज के ऊपर ही प्रेमी अपनी प्रेमिका के पैरों पर गिरता है। और बाहर ऐसे अभिनय को देखकर जो दर्शक मोहित हो जाता है वही वसन्त की चाँदनी रात में कोठे पर अपनी परम सुन्दरी जवान औरत से जाकर इशारे से केवल चाभियों का गुच्छा माँगता है! उस चाभी के माँगने में न राग है, न प्रीति है, न कोई मोह है और न मधुरता ही है।

इसी समय जगत् के सारे अपमानित कवित्व के मर्मस्थल से निकली हुई साँस की तरह एक ठण्डी हवा का झोंका आकर चला गया—टब में लगे हुए बेले की ख़ुशबू छत भर में छा गई—चुन्नी के, सिर के आगे के, छोटे छोटे बाल हिलने

लगे और बसन्ती धोती का आँचल अधीर भाव से इधर-उधर उड़ने लगा । चुन्नी अपने सारे मान को छोड़कर उठ खड़ी हुई ।

स्वामी का हाथ पकड़ कर उसने कहा—"चाभी मैं देती हूँ, तुम कमरे में चलो ।" चुन्नी ने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया है कि आज वह रोएगी और रुलाएगी, अपनी सारी कल्पना को सार्थक करेगी और अपने सब अस्त्र-शस्त्रों से काम लेकर विजय प्राप्त करेगी ।

गोपीनाथ ने कहा—मैं बहुत देर ठहर नहीं सकता—तुम चाभी दो ।

चुन्नी ने कहा—मैं चाभी दूँगी और चाभी-ताले के भीतर जो कुछ है वह सब दे दूँगी—लेकिन आज रात को तुम कहीं जाने न पाओगे ।

गोपीनाथ ने कहा—यह न होगा । मुझे ज़रूरी काम है ।

चुन्नी ने कहा—तो मैं चाभी न दूँगी ।

गोपीनाथ ने कहा—दोगी क्यों नहीं ? देखूँ, कैसे नहीं देती हो !

यह कहकर गोपीनाथ ने चुन्नी के आँचल में देखा, चाभी नहीं बँधी थी । कमरे के भीतर घुस कर शीशे के नीचे के बक्स की दराज़ खोली, उसके भीतर भी चाभी न थी । गोपीनाथ ने ज़ोर करके चुन्नी का वह छोटा बक्स तोड़ डाला जिसमें चोटी बाँधने का सामान—काजल सेंदुर की डिबिया, सिर के डोरे आदि—था । उसमें भी जब चाभी नहीं मिली

तब गोपीनाथ ने बिछौना उलट कर, आलमारियों के ताले तोड़ कर उपद्रव मचा दिया ।

चुन्नो पत्थर की मूर्त्ति की तरह दरवाज़ा पकड़े छत की ओर ताकती रही । गोपीनाथ गुस्से में भरा हुआ चुन्नी के पास आकर गरज कर बोला—मैं कहता हूँ—चाभी दे दो; नहीं अच्छा न होगा ।

चुन्नो ने कुछ जवाब ही नहीं दिया । तब गोपीनाथ ने उसे दबा लिया और उसके हाथों से बाजूबंद, गले से कंठा और उँगली से अँगूठी उतार कर एक लात मार कर चल दिया ।

घर में या बाहर किसी ने कुछ नहीं जाना, किसी परोसी की नींद नहीं खुली, चाँदनी रात वैसे ही चुपचाप अपनी छटा छिटकाती रही । सर्वत्र जैसे अखण्ड शान्ति विराजमान थी । किन्तु हृदय की चिल्लाहट अगर बाहर सुनाई पड़ सकती तो वह चैत की चाँदनी रात अकस्मात् तीव्रतम आर्त्तनाद से गूँज उठती । इस प्रकार चुपचाप ऐसी हृदय-विदारक घटनायें भी जगत् में हो जाया करती हैं ।

लेकिन वह रात भी कट गई । ऐसे अपमान और विड-म्बना की बात चुन्नो गुलबिया से भी न कह सकी । पहले उसने अपने मन में कहा कि आत्महत्या करके, इस अतुल रूप और जवानी को अपने हाथ से टुकड़े टुकड़े करके, अपने इस अना-दर का बदला चुकाना चाहिए । लेकिन फिर उसने सोचा—ऐसा करने से और किसी का क्या बने-बिगड़ेगा, पृथ्वी के और

लोगों की क्या हानि होगी। उसे ज़िन्दगी में कोई सुख नहीं है तो मरने में भी कुछ सन्तोष नहीं है।

इसके बाद चुन्नो गुलबिया को साथ लेकर चली गई। जाते समय साईस की जोडू से कह गई कि "मैं अपने मायके जाती हूँ।" चुन्नो का मायका बनारस में था। उधर गोपीनाथ भी मुसाहबों और यारों के दल को साथ लेकर कुछ दिनों के लिए नाव पर न-जाने कहाँ चला गया।

महारानी-नाटक कम्पनी के हर एक तमाशे में अक्सर गोपीनाथ जाता था। अपने दल के साथ ख़ास दर्जे की आगे की लाइन में गोपीनाथ बैठता था। जब किशोरी सामने आकर अपने अंश का अभिनय करती थी तब गोपीनाथ उन्मत्त सा होकर ऊँचे स्वर से वाह वाह की धुन लगा देता था और अक्सर सौ सौ दो दो सौ के नोट किशोरी के सामने, बतौर इनाम के, फेंक देता था। कभी कभी गुल-गपाड़ा करके गोल-माल मचा देता था। दर्शकों को बहुत बुरा मालूम पड़ता था, लेकिन कम्पनी के मैनेजर वग़ैरह कुछ कहने का साहस न करते थे।

एक दिन गोपीनाथ ने सुरा का सेवन कुछ अधिक मात्रा में कर लिया था। 'ग्रीन-रूम' के भीतर घुस कर उसने उपद्रव मचा दिया। किसी एक कल्पित कारण से अपने को अपमानित मान कर गोपीनाथ एक अभिनय करनेवाली वेश्या को मार बैठा।

उसके चिल्लाने और गोपीनाथ के गाली-गलौज करने से सब दर्शक चौंक उठे ।

उस दिन कम्पनी के मैनेजर से नहीं सहा गया । उसने पुलिस की सहायता से गोपीनाथ को बाहर निकाल दिया ।

गोपीनाथ ने इस अपमान का बदला चुकाने की ठान ली । कलकत्ते में कुआर में दुर्गापूजा के अवसर पर बड़ी धूमधाम होती है । महारानी-कम्पनी ने एक महीने पहले से ही बड़े आडम्बर के साथ नोटिस दिया कि उस अवसर पर सुप्रसिद्ध 'मोहिनी' नाटक का अभिनय बड़े ज़ोर शोर के साथ दिखलाया जायगा । कलकत्ते शहर को जैसे नोटिसों की माला पहना दी गई ।

इस खेल में किशोरी मोहिनी का पार्ट करती थी । उसी की सारी धूम थी । गोपीनाथ इसी बीच में किशोरी को लेकर जलमार्ग से न जाने कहाँ चम्पत हो गया ।

थियेटरवाले बड़ी मुशकिल में पड़ गये ! कुछ दिन तक किशोरी के आने की राह देख कर उन्होंने एक दूसरी औरत रखली और उसे मोहिनी का पार्ट सिखा लिया । इसमें उन्हें कुछ देर अवश्य हो गई ।

लेकिन विशेष हानि नहीं हुई । जिस दिन से 'मोहिनी' नाटक नये ठाट से खेला जाने लगा उस दिन से ऐसी भीड़ होने लगी कि स्टेज के भीतर तिल रखने के लिए भी जगह नहीं मिलती थी । स्थान न मिलने के कारण सैकड़ों लोग फाटक

पर से लौट जाते थे। अख़बारों में भी इस नाटक और अभिनय की प्रशंसा में कई लेख निकले।

गोपीनाथ कलकत्ते से थोड़े ही फ़ासले पर था। यह ख़बर उसे भी लगी। वह समझता था कि किशोरी को भगा लेजाने से नाटक वाले सिर पर हाथ रख कर रोएँगे—तमाशा न कर सकेंगे। इसके विपरीत अभिनय के होने और उसकी धूम मच जाने से गोपीनाथ को बड़ा विस्मय हुआ। किस तरह क्या हुआ, यह जानने के लिए कलकत्ते आकर गोपीनाथ तमाशा देखने गया।

पहला पर्दा उठने पर तमाशे के आरम्भ में मोहिनी दीन-हीन वेश से दासी की तरह अपनी सुसराल में देख पड़ती है—प्रच्छन्न विनम्र और संकुचित भाव से वह अपना काम-काज करती है। उसे कुछ बोलना नहीं पड़ता और उसका मुख भी दर्शकों को स्पष्ट रूप से नहीं देख पड़ता।

किन्तु तमाशे के आख़िरी हिस्से में, मोहिनी का पति मोहिनी को उसके बाप के घर भेज देता है और धन के लोभ से किसी लखपती की अकेली लड़की से ब्याह करता है। ब्याह के बाद पति देखता है कि यह स्त्री भी वही मोहिनी है, केवल वह दासियों का ऐसा वेश नहीं है—आज वह राज-रानियों के ऐसे कपड़े-लत्ते और गहने पहने है—आज उसका अनुपम सौन्दर्य अलङ्कारों से मण्डित होकर चारों ओर फैल रहा है। बचपन में मोहिनी को उसके धनी पिता के घर से कोई

चुरा ले गया था। उसके बाद वह ग़रीब के घर पली और वहीं से उसका व्याह हुआ। बहुत दिनों के बाद मोहिनी के असली बाप को अपनी कन्या का पता लग गया और उसने मोहिनी का दुबारा उसके स्वामी के साथ धूमधाम से व्याह कर दिया है।

इसके बाद रूठी हुई मोहिनी को उसका पति मनाने लगा। इसी बीच में बड़ी गड़बड़ मच गई। मोहिनी जब तक मलिन वेष से मुँह छिपाये रही तब तक गोपीनाथ चुपचाप देखता रहा। किन्तु जब वह बढ़िया पोशाक और गहने पहन कर रूप की लहरें चारों ओर फैलाती हुई स्टेज पर खड़ी हुई और एक अनिर्वचनीय गर्व तथा गौरव के भाव से गर्दन टेढ़ी करके सब दर्शकों की ओर—ख़ास कर सामने बैठे हुए गोपीनाथ के ऊपर—बिजली के समान अवज्ञा-पूर्ण तीक्ष्ण कटाक्ष-बाण छोड़ा; जब उस अदा को देखकर सब दर्शक लोग उमङ्ग के साथ तालियाँ पीट कर अपना आनन्द प्रकट करने लगे तब गोपीनाथ सहसा उठ कर खड़ा हो गया और "चुन्नी चुन्नी!" कह कर चिल्लाने लगा। गोपीनाथ ने दौड़ कर स्टेज के ऊपर चढ़ जाने की चेष्टा की। बाजा बजानेवालों ने उसे पकड़ लिया।

अकस्मात् यों रङ्ग में भङ्ग करते देख कर सब दर्शक लोग अँगरेज़ी और हिन्दी में 'दूर कर दो,' 'बाहर निकाल दो' कह कर चिल्लाने लगे।

गोपीनाथ पागल की तरह बार बार चिल्ला कर कहने लगा—मुझे छोड़ दो, मैं उसे मार डालूँगा !

पुलिस ने आकर गोपीनाथ को घसीट कर बाहर निकाल दिया । कलकत्ते के सारे दर्शकगण आँख भर कर नाटक की नटी के रूप में चुन्नी का अभिनय देखने लगे—केवल गोपीनाथ को वहाँ जगह नहीं मिली ।

इति